सांस्कृतिक कहानियाँ
भाग ६
सुदर्शनसिंह

सांस्कृतिक कहानियाँ

(भाग ६)

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

प्राप्ति-स्थान—

प्रकाशन विभाग

श्रीकृष्ण - जन्मस्थान - सेवासंघ

मथुरा-२८१००१ (उ० प्र०)

अनुक्रमणिका

सुदामाका स्वागत

पत्नीके आग्रह-अनुरोध तथा अपने भुवनमोहन सलोने बालसखाकी अनोखी छबिसे नेत्रोंको तृप्त करनेकी लालसासे सुदामा किसी प्रकार दो मुट्ठी चिउड़ाको पोटली लेकर द्वारिका पहुँचे। उनके सखा सर्वेश होकर भी दीन-बन्धु ठहरे। अतएव वे उनका आतुर आलिङ्गन पाकर उनके अन्त:पुरमें पहुँच गये। सखाके निजी पर्यङ्कपर उन्हें आसन मिला।

द्वारिकाका वैभव, जिसमें लोकपालोंकी सब विभूतियाँ आकर एकत्र हो गयी थीं, संसारकी तो चर्चा ही व्यर्थ है। द्वारिकाने स्वर्गको सुधर्मा सभा और कल्प-वृक्षसे सूना कर दिया था। उस वैभवमयी नगरीमें द्वारिकेशका भवन और उसमें भी उनकी प्रधान प्रिया श्रीरुक्मिणीजी-का अन्त:पुर और वहाँ भी श्रीश्यामसुन्दरका पर्यङ्क। विश्वकी सारी विभूति, सम्पूर्ण सुषमा एवं समस्त लालित्य मानो साकार घनीभूत हो गया था।

मैल जमे, बिवाइयोंसे शतश: बिदीर्ण चरण मानों ग्रीष्मका शुष्क सरोवर दरारोंसे मुख फाड़ खा जाना

चाहता हो। घुटनेसे भी ऊपर ही मैली धोती, जो स्थान-स्थानपर पैबन्द लगी और गाँठोंसे भरी थी। इतनेपर भी बेचारी शरीरको पूरा ढक नहीं सकती थी। उसमेंसे जानुओंका सूखा चमड़ा उतावलीसे बाहर आनेको झाँक रहा था—स्थान-स्थानसे। उस धोतीका भी बड़ा भाई उत्तरीय तो अपने अस्तित्वपर रो रहा था। सिरपर वह भी नहीं। हड्डीके ढाँचेपर चर्म मढ़ दिया गया था। नसें ऐसी उभड़ गयी थीं मानो किसीने ऊपरसे चिपका दी हो। रक्त-मांसका नाम नहीं। दुर्बलता, दरिद्रता एवं करुणाकी साकार प्रतिमा !

उन नटखटने किया क्या ? दरिद्रता एवं कुरूप करुणाकी इस प्रतिमाको उस विभूति तथा सौन्दर्य-माधुर्य-के घनीभावपर उठाकर अपने हाथोंसे स्थापित कर दिया। इसीलिए तो वे दीनबन्धु अनाथनाथके साथ श्रीपति सर्वेश हैं। यह क्या कम उपहास हुआ। नटखट ही क्या जो यहीं शान्त रहे ? सुदामाको पता ही नहीं था कि अभी सोलह हजार एक सौ आठका चक्कर बाकी है।

पता नहीं होली थी कि नहीं ; लेकिन बहुत दिनपर दो बाल-मित्र मिले थे। यही उनके लिए पर्याप्त था। आमोद, कौतुक आज न होगा तो कब होगा ? श्यामसुन्दर ठहरे सदाके शरारती, उन्होंने रुक्मिणीजीको कुछ संकेत किया और नाटक प्रारम्भ हो गया।

सुदामा पलँगपर बैठे थे। उन्होंने स्नान-भोजन कर लिया था। मार्गका श्रम दूर हो चुका था। अब रुक्मिणी-

जीने आकर उनके श्रीचरणोंपर मस्तक रक्खा। सुदामा इतनी देरमें उनसे परिचित हो चुके थे। हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया 'सौभाग्यवती, पुत्रवती, पतिप्रिया भव !' रुक्मिणीजी एक ओर हट गयीं। सत्यभामाजी आयीं। उन्होंने भी वैसे ही प्रणाम किया। सुदामाने परिचयके लिए सखाके मुखकी ओर दृष्टि की।

'ये आपके सखाकी—' श्यामसुन्दर मुसकराये।

'सौभाग्यवती, पुत्रवती, प्रतिप्रिया भव !' ब्राह्मणने आशीर्वाद दिया और वे भी हट गयीं। अब जाम्बवतीजीने चरणोंपर मस्तक रक्खा। विप्रने दृष्टि उठाकर सखासे फिर परिचय चाहा।

'ये भी !' सखाके मन्द मुसकानमें परिचय संक्षिप्त कर लिया। फिर वही आशीर्वाद मिला और उनके हटने-पर सत्याजी आकर प्रणत हुईं। इस बार सखाकी ओर दृष्टि उठानेपर केवल संकेतसे संक्षिप्त उत्तर मिला 'हूँ !' बेचारे ब्राह्मणने आशीर्वाद दे दिया।

दो, चार, छः—यह तो प्रणाम करनेवालोंका ताँता ही नहीं टूटता। 'कितनी रानियाँ हैं इनके ?' ब्राह्मणने मन-ही-मन कहा। परिचय-जिज्ञासाके उत्तरमें वही 'हूँ !' मिलते देख उन्होंने परिचय जाननेके लिए सखाकी ओर देखना छोड़ दिया और धड़ाधड़ आशीर्वाद देने लगे।

दर्जन पूरी होते-होते ब्राह्मणको लगा कि उसका आशीर्वाद बहुत लम्बा है और रानियोंका ताँता टूटता

ही नहीं था। इसलिए उन्होंने अपने आशीर्वादका संक्षिप्त संस्करण किया 'पुत्रवती, पतिप्रिया भव !'

लगभग एक दर्जन प्रणाम और हुए। ब्राह्मण-देवता घबड़ाये। उन्होंने फिर आशीर्वादको संक्षिप्त किया 'पति-प्रिया भव !' लेकिन यहां तो रानियोंका तांता लगा था। जब आशीर्वाद देते-देते थक गये तो केवल 'भव !' कहकर काम चलाने लगे और जब जिह्वाने सत्याग्रह कर दिया तो हाथ हिलाकर ही सन्तोष करना पड़ा। बेचारा वह दुर्बल हाथ भी कबतक साथ देता ? थक गया। सिर हिलाकर, नेत्रोंके संकेतसे आशीर्वाद देना प्रारम्भ हुआ। यहाँ भी पार पड़ता दीख नहीं पड़ा। शरीर बैठे रहनेमें भी असमर्थ होने लगा। ब्राह्मण झुँझला गये।

'भाई ! तुम्हारी रानियोंकी संख्याका आदि-अन्त भी है या तुम्हारी ही भाँति वे भी अनन्त हैं ?' उन्होंने कातर वाणीसे पूछा।

'नहीं-नहीं !' सखा मुसकराये—'अभी दो हजार सात सौ तेरहने प्रणाम किया है। रानियोंकी संख्या सिर्फ सोलह हजार एक सौ आठ है।'

'बाप रे।' सुदामा बहुत घबड़ाये। 'अब इस आशी-र्वादसे पिण्ड कैसे छूटे ?' उन्होंने कहा—'संख्या तो चाहे जितनी बढ़े, कोई आपत्ति नहीं। वह खूब बढ़े ; पर यह सबको आशीर्वाद···।' उन्होंने अपनी उलझन प्रकट की।

सखा जोरसे हँस पड़े। रानियां भी मुसकरा पड़ीं। ब्रह्मण्यदेवको ब्राह्मणपर दया आयी। उन्होंने झट बीचमें

उठकर विप्रके चरणोंपर अपना मस्तक रख दिया। सुदामा डरे 'इन्होंने एक संख्या और बढ़ा दी !' लेकिन किसीने हृदयमें कहा 'पति अपनी सभी पत्नियोंका प्रतिनिधि होता है।' झट प्रसन्नतासे खिल उठे। आशीर्वाद दिया 'तुम्हारी सभी पत्नियाँ सौभाग्यवती, पुत्रवती और तुम्हें प्रिय हों।' इस प्रकार उन्हें आशीर्वादसे छुट्टी मिली। सभी रानियोंने एक ही साथ अञ्जलि बाँधकर सिर झुका दिये।

× × ×

'कल तो समय मिला नहीं, आज सब आपकी सेवा करनेका सौभाग्य चाहती हैं।' नटखट सखाने भूमिका बनायी।

सुदामाको स्नान करना था। वे विशाल सौधके प्राङ्गणमें अपने बालसखाका हाथ पकड़े पधारे। मध्यमें स्वर्णकी चौकी बिछी थी। उन्होंने उसपर चरण रक्खा ही था कि सारा प्राङ्गण तथा उसके चारों ओरके बरामदे सोलह हजार एक सौ आठ चल स्वर्णलतिकाओंके द्वारा झूम उठे। सौन्दर्य एवं सुरभि फटी पड़ती थी। किसीके हाथमें उबटन, किसीके चन्दन, किसीके तैल और किसीके करोंमें सुवासित जलसे पूर्ण स्वर्णकलश। विप्रके दर्शन रिक्तहस्त करनेकी धृष्टता किसीने नहीं की थी।

ब्राह्मणने एक बार दृष्टि उठायी। 'उफ् ! इतनी भीड़, एक-एक बूँद भी जल डाले तो मेरा क्या होगा ?' वे बहुत डरे। उनके सखा हँस रहे थे। बड़ी ही नम्रतासे

उन्होंने कहा 'समस्त विश्वकी श्रद्धाका विपुल उपहार ग्रहण करनेकी क्षमता तुम सर्वशक्तिमान्में ही है। यह तीन हड्डियोंका कङ्काल पूजाके इस विराट् सम्भारको सह लेनेमें समर्थ नहीं।'

सखा क्यों उत्तर देने लगे ? वे एक ओर खिसक गये। उस सुषमाकी भीड़ने कलकण्ठसे स्तुतिगान प्रारम्भ किया और साथ ही विप्राभिषेक भी। जैसे ही कुछ मृदु करोंने ब्राह्मणके शरीरपर उबटनका स्पर्श कराया—वे नेत्र बन्द करके बैठ गये और लगे अपने नटखट सखाका ध्यान करने। उन्हें आशा नहीं थी कि वे इस चन्दन, तैल और जलके प्रवाहमेंसे निकलकर फिर खड़े होने योग्य रहेंगे।

उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ। उन्होंने नेत्र बन्द किये-ही-किये अनुभव किया कि सुगन्धित उबटनके कीचमें शरीर आकण्ठ ढक दिया गया है। हाथ हिल नहीं सकते। वे डरे 'कहीं और उबटन चढ़ा तो नाक-आँख भी……। उन्हें उबटन समाधि लेनी होगी।' पर ऐसा हुआ नहीं। उनके मस्तकपर तैलकी सुगन्धित धारा पड़ने लगी। शिवजीके ऊपर तो सब धाराबद्ध जल चढ़ाते हैं और यहाँ बहुमूल्य तैल-इत्र। विप्रने तनिक नेत्र खोले। आँगनमें इत्र मोरियोंमें उमड़ चला था। 'कहीं नेत्रोंमें न जाय।' उन्होंने नेत्र जोरसे बन्द कर लिए। वैसे ही बोले 'ऐसी अखण्ड धारा चढ़ानी है तो शङ्करजीको पकड़ लाओ।' पर उस स्तोत्र-गानमें उनकी सुने कौन ?

तैल-इत्र बन्द हो गया और केशरिया चन्दन चढ़ने लगा। उबटनने तो कण्ठतक ही जकड़ा था, चन्दन दो-चार सेर मस्तकपर भी चढ़ ही गया। कुशल इतनी रही कि नाक और मुख ढकनेके पूर्व ही मस्तकपर जलधारा पड़ी। मन्दोष्ण सुवासित जलकी कुछ पतली और कभी-कभी मोटी धारें मस्तकसे चरणोंतक पड़ रही थीं। शरीर थोड़ी ही देरमें थरथरा उठा। रोमाञ्च हो आया और तभी जलधारा और स्तुति-गान समाप्त हो गया। सहसा शान्ति हो गयी।

'ध्यान ही करते रहेंगे या वस्त्र भी बदलेंगे? अपने करोंमें सुकोमल वस्त्रको लेकर उनका शरीर पोंछते हुए उनके सखा हँसते-हँसते कह रहे थे। अभी और कोई वस्तु न चढ़ने लगे, इसी भयसे विप्रने नेत्र खोले नहीं थे।

यह क्या? बाजीगरके खेलके समान हो गया। पूरा प्राङ्गण सुनसान पड़ा था। सखाके अतिरिक्त वहाँ कोई था नहीं। विप्रको भी इस परिहासपर हँसी आ गयी। उन्होंने वस्त्र बदले और पहलेसे प्रस्तुत दूसरे आसनपर एक कुसुम-कुञ्जमें सन्ध्या-पूजाके लिए बैठ गये।

× × ×

ऊपर कौशेय वस्त्रका मण्डप तना था। नीचे दुग्धोज्ज्वल चाँदनी बिछी थी। मध्यमें एक मृदुल आस्तरण-आस्तृत रत्नजटित स्वर्णचौकी रक्खी थी। रजत-पीठोंपर स्वर्णथालियोंमें विविध व्यञ्जन एवं जल पात्र रक्खे थे।

समस्त मण्डपमें थालियोंकी पंक्ति लगी थी। दो पंक्तियों-के मध्यमें जानेको स्थान था। प्रत्येक पंक्ति मध्यके रत्न-पीठसे प्रारम्भ होती थी। हाथमें चँवर लिए श्यामसुन्दर स्वयं चँवर कर रहे थे। इस प्रकार सुदामा भोजन-स्थान-के उस दिव्य मण्डपके द्वारपर पहुँचे।

'प्रत्येक रानीने अपनी योग्यताके अनुसार अपना थाल सजाया है। उन्होंने इन व्यञ्जनोंके बनानेमें किसी सेवकसे कोई सहायता नहीं ली है।' सखाने परिचय दिया।

ब्राह्मणके चरण द्वारपर ही रुक गये। 'द्वारिकेशकी प्रियाओंने स्वयं अपने कोमल करोंसे अग्निके सम्मुख बैठ-कर इस कङ्गालके लिए यह कष्ट किया है।' विप्र बड़े धर्मसङ्कटमें पड़े। 'जगदाधार जगन्नाथकी कुसुम सुकुमार रानियाँ, जो स्वयं पुष्प-चयन करनेमें भी कष्ट पाती होंगी, महेन्द्र भी जिनकी कठोर भृकुटिसे काँपते हैं, सचराचर जिनकी चरण-रेणु मस्तकपर रखकर पवित्र होता है, उन्होंने अग्निकी उष्णता और धूम्रकी नेत्रोंको पीड़ा देने-वाली कटुताकी चिन्ता न करके यह प्रसाद प्रस्तुत किया है। ब्राह्मणके लिए इतनी श्रद्धा! इतनी कष्टसहिष्णुता, इतना आदर?' वे गद्गद् हो गये।

रानियोंकी श्रद्धा और कष्टको देखते वह प्रसाद जितना महान् था, थालियोंकी संख्याकी दृष्टिसे उतना ही विपुल भी। ब्राह्मणका हृदय बैठा जाता था। वे किसे छोड़ दें? इतने थालोंमेंसे एक-एक ग्रास तो क्या एक-एक

दाना उठानेकी भी शक्ति यदि उनमें होती—कितने प्रसन्न होते वे ?

द्वारपर ही घुटनोंके बल बैठकर उन्होंने भूमिपर मस्तक रख दिया।

'आप यह क्या कर रहे हैं ?' हँसते हुए सखाने पूछा।

'मोहन !' विप्रके नेत्र भरे थे। 'इस दुर्बल शरीरमें इतनी भी शक्ति नहीं कि इन थालियोंके चारों ओर घूम आवे। इनमें जो रानियोंकी श्रद्धा और कष्टका प्रतीक है, उसे प्रणाम कर रहा हूँ।'

'आप आसनपर भी पधारेंगे या नहीं ?' सखाने हँसकर कहा। 'क्या करूँगा वहाँ जाकर ?' ब्राह्मण इस परिहाससे विचलित हो रहा था। 'आपने कोई भोजनका डौल तो किया नहीं है। इतनी लम्बी थालियोंकी पंक्तिमें मैं दौड़ूँ या भोजन करूँ ? मैं न कुम्भकर्ण हूँ, न अगस्त्य। न काल हूँ, न समुद्र। आपकी बुआके लड़के भीमसेन होते तो भी बात दूसरी थी। मेरा दुर्बल शरीर तो इतना हिल भी नहीं सकेगा कि इनमेंसे एक-एक दाना उठा सकूँ।'

'आप व्याख्यान देंगे या आसनपर चलेंगे ?' श्यामने तनिक ठेला। चुपचाप जाकर सुदामा आसनपर बैठ गये।

'इन प्रसादके पात्रोंको कृतार्थ करें।' दोनों हाथ जोड़कर, बनावटी गाम्भीर्य दिखाते हुए सखाने कहा।

'बस कृपा करो !' ब्राह्मणने दोनों हाथ जोड़े और नेत्र बन्द कर लिए। अब नटखटको दया आ गयी। पलक

मारते विप्रके सामने एक थाल आ गया। सबसे बड़ा, सबसे सुन्दर, सबसे बहुमूल्य। उसीमें सब थालोंमेंसे एक-एक, दो-दो कण योगमायाने संग्रह कर दिये। रानियोंको सन्तोष हो गया। वे झटपट अपने-अपने थाल 'प्रसाद' समझकर उठा ले गयीं। ब्राह्मणने नेत्र खोले और छककर भोजन किया।

आचमन करनेपर एक ताम्बूलोंका पर्वत उन्हें दिखाया गया। झट उन्होंने नेत्र बन्द करके एक ताम्बूल उठाया और मुखमें ले लिया। अबकी बार उन्होंने सखा-को छका दिया था। दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े।

× × ×

उत्तमासनपर दोनों बालमित्रोंका हास-परिहास चल ही रहा था कि हाथ जोड़कर श्रीरुक्मिणीजी सम्मुख उपस्थित हुईं। 'मेरा परम सौभाग्य है कि आप मेरे भवन-को अपनी चरणरेणुसे पवित्र करते हैं!' उन्होंने स्तुति की।

'पर पता नहीं हमारे किस जन्मके पाप उदय हुए हैं कि हमारे सदन आपके श्रीचरणोंसे वञ्चित ही हैं।' सत्यभामाजीने पास ही खड़े होकर प्रार्थना की।

'मेरी बहिनें मेरे सौभाग्यपर ईर्ष्या करती हैं।' रुक्मिणीजी मुसकरायीं।

'ठीक भी तो है' श्यामसुन्दर हँसते-हँसते बोले—'आपको कम-से-कम एक-एक दिनकी सेवाका सौभाग्य तो सभीको देना चाहिये।' उन्होंने प्रस्ताव किया।

'एक-एक दिन सबको ?' सुदामाने चौंककर पूछा ।

'इसमें आपको सुविधा होगी । न कलशों जल चढ़ेगा और न थालियोंकी प्रदक्षिणा करनी होगी । एक-एक दिनमें सबको सभी प्रकारकी सेवा भी प्राप्त हो जायगी ; और आपको कष्ट भी नहीं होगा ।' नटनागर हँस रहे थे ।

'सोलह हजार एक सौ आठ दिन । चौवालीस वर्षसे भी अधिक !' ब्राह्मणने चौंककर डरते हुए कहा । 'श्याम-सुन्दर ! इतने दिनोंमें बेचारी ब्राह्मणी प्रतीक्षा करते-करते मर जायगी और सम्भवतः इस केवल एक-एक दिनके सत्कारको बीचमें ही छोड़कर यह दुर्बल ब्राह्मण भी···!'

'तब जाने दें !' द्वारिकेशने मुख गम्भीर कर लिया ।

'हमारे भवन चरण-रजसे भी वञ्चित ही रहेंगे ?' सत्यभामाजीने कुछ करुण-स्वरमें पूछा ।

'हाँ—एक बार आप सब भवनोंमें हो आवें !' सखाने चटसे कह दिया ।

'सब भवनोंमें हो आवें ! जैसे बच्चेका खेल है ! भवन भी तो थोड़े ही हैं न ?' विप्रने झुँझलाहटसे कहा ।

'नहीं, नहीं, आपको पैदल नहीं दौड़ना होगा !' सखाने आश्वासन दिया, 'कोई है ? दारुकसे कहो मेरा रथ प्रस्तुत करे ।' व्यवस्था होने लगी ।

'और मैं सोलह हजार एक सौ आठ बार रथसे चढ़ा-उतरीका व्यायाम करूँ ?' ब्राह्मणकी झुँझलाहट दूर नहीं हुई थी ।

अन्तमें, गरुड़का आह्वान हुआ और सुदामा पक्षिराज-की पीठपर आगे श्यामसुन्दरको बैठाकर पीछे बैठे उन्हें जोरसे पकड़कर। वह भी इस शर्तपर कि वे किसीके आँगनमें पक्षिराजकी पीठसे नहीं उतरेंगे।

ब्राह्मणके लिए यह पक्षि-यान था नवीन ही। वे डरते थे। जोरसे आगे बैठे सखाको दोनों हाथोंसे पकड़े थे। गरुड़ प्रत्येक राज्ञीके प्राङ्गणमें उतरते। वहाँ उनकी अर्घ्य, पाद्य, धूप, दीपसे पूजा होती। नैवेद्य वे ग्रहण करते नहीं थे। केवल लेकर गरुड़के आगे रख देते थे और गरुड़ इस प्रसादको क्यों छोड़ते। मालाएँ भी गरुड़के गलेमें ही सुदामा डाल देते थे। गरुड़ अधिक हो जानेपर उन्हें उड़ते-उड़ते ही समुद्रमें छोड़ आते थे। इस प्रकार सबके भवनों-को पक्षि-यानसे पवित्र करते-करते सुदामाको कई सप्ताह-में छुट्टी मिली।

अन्तमें उनके नटखट सखाने उन्हें द्वारिकासे विदा किया, उनकी उसी फटी लँगोटी और अँगोछेमें। कौशेय दुकूल वहीं छोड़कर उन्होंने अपनी फटी लँगोटी लगा ली थी और सखाने कोई आपत्ति की नहीं थी। स्वागत-सत्कार तो खूब हुआ ; पर 'दक्षिणाभावे अक्षतम्' भी नहीं रहा। वे जो दो मुट्ठी तन्दुल ले आये थे, उसे भी छीनकर नटवरने खा लिया था। खाली हाथ ही लौटे।

× × ×

ब्राह्मणने रो-गाकर अपनी कुटियाके स्थानपर बने विराट् राजसदनमें प्रवेश किया। वे तो द्वारसे ही लौट

जाते, पर उनकी पत्नीने देख लिया और द्वारतक आकर वे अपने पतिदेवको ले गयीं। भीतर दासियोंका मेला लगा था। ब्राह्मणने पूछा 'कितनी हैं ये ?' पत्नीने हँसकर कहा 'सोलह हजार एक सौ आठ।'

इसी समय उन्हें भवनके पृष्ठभागमें कई मील लम्बे-चौड़े घेरेमें गौएँ-गौएँ ही दृष्टि पड़ीं। सभीके खुर एवं सींग सोनेसे मढ़े थे। सब रत्नजटित झूलोंसे आच्छादित थीं। सबके समीप सुन्दर दो-तीन महीनेके बछड़े थे। सब हृष्ट-पुष्ट थीं।

ब्राह्मणने उल्लसित होकर कहा—'कितनी सुन्दर गौएँ हैं !'

पत्नीने मुसकराकर बताया 'हैं भी सोलह हजार एक सौ आठ।'

ब्राह्मण समझ गये यह सखाके पत्नियोंकी संख्या है। यह उन्हींकी दी हुई दक्षिणा है। जब सखाने यह वैभव दिया तो उनकी पत्नियाँ ब्राह्मणको एक-एक गौ और ब्राह्मणीको एक-एक दासी क्यों न दें ?

उन्होंने देखा—उनके घरमें सोलह हजार एक सौ आठ-का साम्राज्य है। थाली, लोटा, छाता, खड़ाऊँ, रत्न आदि सभी उसी संख्यामें आ पहुँचे हैं। फिर भी वे द्वारिकाकी सजी हुई सोलह हजार एक सौ आठ थालियों, स्नानके उस सम्भार अथवा प्रणामकी उस अड़चनको भूल सकेंगे ?

यहाँकी संख्याएँ तो वहाँकी प्रतीक हैं।

राष्ट्र-पुरुष

महोत्कट—यह उसका नाम है, यों उसका पूरा नाम लेना हो तो कहना पड़ेगा अरण्यसार्वभौम दुर्दान्त महोत्कट। वह शकद्वीप (अफ्रिका) के गहन अरण्यप्रान्तका सार्वभौम शासक है। अरण्यनिवासी उसे अपना अग्रणी मानते हैं। सामान्य मानवके लिए अगम्य वह प्रान्त उसके लिए क्रीड़ा-उपवन-जैसा है। यह ठीक है कि अरण्यवासियोंका कोई राज्य नहीं है। उनकी अनेक जातियाँ हैं और वे छोटे-छोटे गाँवोंमें इतनी दूर-दूर बिखरी हैं कि एक ग्रामवासी दूसरे ग्रामवासीसे पूरे जीवनमें भी कभी मिलेगा या नहीं, कोई कह नहीं सकता। कँटीली झाड़ियोंसे घिरी थोड़ी-सी भूमिके मध्य कुछ झोंपड़े—यही वहाँके ग्राम हैं। वहाँके ग्रामका जीवन उन झाड़ियोंके बाहर अकल्पित दूरीतक फैले घोर वनमें संघर्षका जीवन है। अरण्य उनका जीवन है और वही मृत्यु भी है। वहींसे उन्हें फल, कन्द, छालें तथा आखेट प्राप्त होता है और वहाँके सिंह, शरट्, सर्प, वनमानुष आदि हिंसक क्रूर पशु—कौन कह सकता है कि कब कौन-सा वनवासी मानव किस पिशिताशन पशुके पंजेमें आ जायगा।

जीवनके इस संघर्षमें महोत्कट जैसे विजयके लिए ही उत्पन्न हुआ। उसका जन्म अपने छोटेसे गाँवके नायकके घर हुआ। कोई नहीं जानता था उस समय तक कि अरण्यके अनन्त विस्तारमें 'शङ्कु' नामक झोंपड़ियोंका छोटा झुण्ड कहाँ है। महोत्कट युवा होनेसे पूर्व ही अपने नामको सार्थक करने लगा। उसे अपने गाँव, अपनी झोंपड़ीकी जैसे अपेक्षा ही नहीं रही। उसका शरीर जैसे बटे हुए रस्सोंसे बना था। कज्जल कृष्णवर्ण, घुंघराले केश, मोटे अधर, छोटे नेत्र—यह तो प्रत्येक शकद्वीपवासीकी विशिष्ट आकृति है। महोत्कटने महादीर्घकाय पाया था और उस कायामें जैसे पराक्रम कूट-कूटकर भरा था। जब वह केवल बारह वर्षका था—एक केशरीसे भिड़ गया और वनराज पञ्जे फटकारे, इससे पहिले तो महोत्कटने उसके जबड़े चीर डाले। मृत सिंहको भूमिपर फेंककर उसके ऊपर जब दाहिने पैरको रखकर उसने चिचकारी मारी—कानन गूंज गया बालककी चिचकारीसे और महोत्कटकी वह पहिली जय-घोषणा थी।

अपने ग्रामसे महोत्कट कब अदृश्य हो जायगा और कब फिर लौटेगा, कोई नहीं जानता। उसे बचपनसे व्यसन है अरण्यमें चाहे जहाँ भटक जानेका। अरण्यके महाकाय शरट् उसके थपेड़ोंसे अनेक बार पिस चुके हैं। अरण्यग्रामोंके क्रूर अपरिचित वनवासी—वह किसी ग्राममें चाहे जब निर्भय पहुँचकर गर्जना करता है—'मैं हूँ महोत्कट! युद्ध करोगे या अतिथि बनाओगे? रात्रि-विश्रामके लिए एक झोपड़ी और भोजन--बस, मुझे

इतना ही चाहिये।' कई बार—कहना चाहिये कि शतशः अवसरोंपर युद्ध हुए ; किंतु अकेले महोत्कटने आक्रमणकारियोंको जब चिचकारी मारते हुए पटकना, पीसना और हिंस्रपशुकी भाँति चीरकर फेंक देना प्रारम्भ किया—उससे सन्धि करनेके अतिरिक्त दूसरा उपाय क्या था। अब तो वह अरण्यसार्वभौम है। जिन दूरस्थ अरण्यवासियोंने उसे कभी नहीं देखा, वे भी उसके नामको उसी प्रकार आदरसे लेते हैं, जिस प्रकार कोई राजभक्त प्रजा अपने सम्राट्का स्मरण करती है।

अरण्यसार्वभौम दुर्दान्त महोत्कटने इस बार भारतकी यात्राका निश्चय किया है। शकद्वीपके आरण्य मानवके इतिहासमें कदाचित् यह पहली बात है कि उसका प्रतिनिधि भारत जायगा। 'भारतीय पुरुष देवपुरुष हैं। उनसे युद्धकी बात तो सोचना ही पाप है। उनकी निन्दा करनेवालोंको यमराज नरकाग्निमें अवश्य भूनते हैं।' यह विश्वास—(आप अन्धविश्वास कहें तो भी कोई आपत्ति नहीं) शकद्वीपमें युगोंसे चलता आया है। यह विश्वास न भी हो तो भारतकी कोई हानि नहीं। उसके महारथियोंके दिव्यास्त्र काननवासियोंके अन्धविश्वासोंसे अधिक शक्तिशाली हैं। भारतीय नरेश बार-बार अश्वमेध यज्ञ करते हैं। शकद्वीप युद्धकी बात कभी सोचता ही नहीं। उसके तटप्रान्तके अधिवासी बड़ी श्रद्धासे 'कर' देते हैं। भारतसम्राट्को 'कर' देना वहाँ सौभाग्य माना जाता है। लेकिन इस बार धर्मराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ कर रहे हैं। राजसूय यज्ञ जो भारतमें भी कोई चक्रवर्ती सम्राट्

ही कदाचित् कर सकता है। शकद्वीपके घोर आरण्य शासनहीन भागका कोई प्रतिनिधि उसमें उपस्थित नहीं होगा ? अरण्यको सम्राट्के श्रीचरणोंमें अपने उपहार भेंट करनेका अवसर नहीं मिलेगा ? जब यज्ञीय अश्व शकद्वीपके तटीय अधिवासियोंके नायकोंसे उपहार लेकर लौट गया—महोत्कटको बड़ा दुःख हुआ। वह आरण्य ग्रामोंमें जहाँतक स्वयं जा सका घूम आया। अनेक स्थानोंमें उसने प्रतिनिधि भेजे। आरण्य-ग्रामोंके नायक पहली बार एकत्र हुए और उन्होंने निश्चय किया कि राजसूय यज्ञमें अरण्यका प्रतिनिधि उपहार लेकर उपस्थित हो। महोत्कटके नेतृत्वमें देवभूमि भारतके दर्शनका सौभाग्य—सम्भव होता तो अरण्यकी पूरी जनसंख्या भारत आ जाती। ग्रामनायकोंको समझानेमें बड़ी कठिनाई हुई। पूरे पाँच सौ आरण्य चुने गये इस दिव्य यात्राके लिए।

सम्राट्को उपहार भेंट करनेके लिए अरण्यवासियोंके पास अभाव क्या था। नगरोंके लिए सुदुर्लभ ओषधियाँ, अलभ्य चर्म, महामूल्यवान् मणिराशि और विश्वकी श्रेष्ठतम गजमुक्ता। कोई सम्राट् भी जिस धनकी स्पृहा करे, आरण्य नायकोंके लिये वे सहज-सुगम पदार्थ थे।

गजदन्त और शङ्खके आभूषण, चर्म वस्त्र, धनुष तो सार्वभौम आयुध ठहरा—उसके साथ वनपक्षियोंके पंखोंके चित्र-विचित्र मुकुट अद्भुत शोभा देते थे। महोत्कटको जो कठिनाई हुई—वह अरण्यसे समुद्रतट तक अपने दल एव उपहार लानेमें ही हुई। तटपर भारतीय पोत खड़े

थे। जीवनमें पहली बार जिन्होंने पोत देखे हों वे वणिक्पोत और युद्धपोतका भेद समझ नहीं सकते। महोत्कटने बताया—'उनका दल सम्राट्‌को राजसूय यज्ञमें उपहार भेंट करने जाना चाहता है।'

'आपलोग भारतके अतिथि हैं!' एक पोतके अध्यक्षने बड़े आदरसे कहा। उसके पश्चात् महोत्कटको कुछ नहीं करना पड़ा। उसके पूरे दलको लेकर एक भारतीय पोत चल पड़ा। आरण्य मानवोंको समुद्रयात्रामें कोई कष्ट न हो, इसकी पूरी व्यवस्था करना पोतके अध्यक्षने अपना कर्तव्य मान लिया था।

× × ×

'भारत देवभूमि है!' महोत्कट और उसके सहचरोंने परम्परासे सुना है। उन्होंने एक कल्पना कर रक्खी थी देवभूमिके सम्बन्धमें। लेकिन जहाँ चारों ओर हिंस्र पशुओंसे भरे घोर अरण्य हैं, जहाँ प्रत्येक मानव अपरिचित मानवके लिए किसी भी क्रूर पशुसे कहीं अधिक भयावह है, जहाँ अहर्निश आत्मरक्षाके लिए जागरूक एवं आहार-प्राप्तिके लिए व्यग्र पशुप्राय जीवन ही जीवन है, वहाँके निवासीकी भव्यतर कल्पना भी कहाँतक जा सकती है?

भारतीय धरापर चरण रखनेसे बहुत पूर्व इन आरण्य यात्रियोंको भारतीय देवमानवोंके शील, आतिथ्य एवं सद्व्यवहारका परिचय पोतमें ही प्राप्त हो गया था। भारतभूमिपर उतरते ही वे जैसे एक अकल्पनीय लोकमें पहुँच गये। शस्य-श्यामला धरा, फलभारसे झुके विटप,

कुसुमसौरभका उपहार सजाये लतिकाएँ–अरण्य ही जिनका जीवन है, उनके लिए भी भारतीय उपवन अकल्पनीय थे। नगर और भवनोंकी तो चर्चा करना ही व्यर्थ है। वे जिधर दृष्टि डालते थे, चकितसे देखते रह जाते थे।

पशु भी सुहृद् होता है, निर्भीक होता है—अधिक-से-अधिक पालतू कुत्तोंके विषयमें उनकी यह धारणा थी। लेकिन भारतीय काननों एवं उपवनोंके मृग जब उन्हें सूँघकर बछड़ेकी भाँति फुदक उठते—वे देखते रह जाते। 'यह देवताओंका प्रभाव है।' महोत्कट चिल्ला उठा था, जब उसने देखा कि एक ऋषि-आश्रममें केहरी मस्तक झुकाये बैठा है और नन्हा ऋषिकुमार देवोपम सौन्दर्य सौकुमार्यकी मूर्ति उस वनराजकी पीठपर चढ़कर अपने किसलय करोंसे उसके मस्तकको थपथपा रहा है। 'मनुष्यका चिरशत्रु सिंह भी मित्र बन सकता है।'

भारतके मनुष्योंकी बात तो पूछने योग्य ही नहीं। इनके सौन्दर्य, सम्पत्ति और शीलकी कल्पना कोई वनवासी कैसे कर सकता है। शकद्वीपके आरण्य अतिथि देववाणी नहीं जानते। उनकी भाषा इतनी अपभ्रंश है कि उसे भारतमें सामान्यजन समझ नहीं पाते। लेकिन अतिथि-प्राण भारतमें उनकी भाषा समझी जाय या न समझी जाय, उनकी सुविधाका ध्यान तो प्रत्येक व्यक्ति रखता है। वे जिससे मिलते हैं, वही उनका भरपूर सत्कार करता है। पूरी चेष्टा करता है कि उन्हें अपरिचयजन्य कष्ट न हो।

अतिथियोंको इन्द्रप्रस्थ जाना है। जिस पोतसे वे आये हैं, उसके अध्यक्षने उनको रथोंसे पहुँचानेकी व्यवस्था कर दी है। उनके साथ मार्गदर्शक है। मार्गके ग्राम, ग्राश्रम एवं नगरोंके लोगोंमेंसे प्रत्येक चाहता है कि उनके आतिथ्यका उसे अवसर मिले। उनको क्या आवश्यकता कब हो सकती है—यह अनुमान इतना ठीक-ठीक कर लिया जाता है कि अतिथियोंकी यह धारणा हो गयी है कि प्रत्येक भारतीय सर्वज्ञ है। अतिथियोंकी भाषा भले न समझी जाय, उनका संकेत समझनेमें कभी भूल नहीं होती।

भारत श्रद्धाकी—पूजाकी भूमि है। आरण्य अतिथि समझ नहीं पाते कि वे यहाँके देव-मानवोंके सत्कारका कैसे उत्तर दें। उन्हें लगता है कि यहाँका शिशु भी उनका पूज्य है। उन्हें स्थान-स्थानपर उपहार देनेका प्रयत्न होता है। ऐसे उपहार जो किसी अरण्यवासी तो क्या नागरिक-के लिए भी स्पृहाके योग्य हों। अश्व, गज, वस्त्र आभू-षण, वृषभ, गायें तथा और भी नाना प्रकारकी वस्तुएँ—लेकिन जो पूज्य हैं, जिनको भेंट देनी चाहिए, उनसे उपहार लिया कैसे जा सकता है। अतिथि बार-बार भूमि-में मस्तक रखकर प्रणत होते हैं, बार-बार करबद्ध होते हैं और उनके नेत्रोंका सजल होना तो एक सहज कर्म हो गया है।

अद्भुत आश्चर्योंसे भरे देवभूमिके देव-मानवोंकी अकल्पनीय दयाका दर्शन करते जब अतिथिवर्ग इन्द्रप्रस्थके समीप पहुँचा—स्तब्ध रह गया। इतनी भीड़, इतना

कोलाहल, इतना ऐश्वर्य और वहाँ भी इतनी व्यवस्था ! इतनी भव्यता ! इतनी शान्ति !! महाराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ कर रहे हैं। धराके कोने-कोनेसे जनसमुदाय इन्द्रप्रस्थमें एकत्र हो रहा है। नरेशोंकी सेनाएँ, ऋषियोंके समूह, वणिग्वर्गके वाहनोंकी पंक्तियाँ—इन्द्रप्रस्थ मानव-महासागर हो रहा है। मनुष्योंके प्रवाह चले आते हैं वहाँ। संसारके सभी भागोंके लोग, विभिन्न वेश, विभिन्न भाषा और सब अपने पूरे साजसे आये हैं। ऐश्वर्य साकार होकर उतर आया है इस धरापर। सबमें उत्सुकता है सम्राट्के दर्शनकी। कोई इधर-उधर नहीं देखता, किसी-को अवकाश नहीं।

'कौन पूछेगा हमें ? कितने तुच्छ हैं हम अरण्यवासी इस देवराजधानीमें ?' महोत्कटने कुछ कहा नहीं ; किंतु उसने अपने सहचरोंकी ओर जिस दृष्टिसे देखा, उसका दूसरा कोई भाव नहीं हो सकता था। अरण्यके उस दुर्दान्त अपरिजेय मानवके मनमें पहली बार अपनी तुच्छताका भाव आया और वह हतप्रभ हो उठा।

'बन्धु महोत्कट !' महोत्कट तो चौंक उठा। इस मानव-महासागरमें कौन उसे उसकी भाषामें पुकारता है ? यहाँ उसे पहचाननेवाला कौन आ गया ? मनुष्यका स्वर इतना मधुर—इतना जलद गम्भीर !

'तुमको मार्गमें कष्ट तो नहीं हुआ ?' देखा महोत्कट-ने कि पता नहीं कहाँसे चार उज्ज्वल अश्वोंसे जुता एक अद्भुत रथ उसके रथके सम्मुख आकर रुक गया है और

उसमें बैठा एक नव-जलधर-सुन्दर मुसकराता हुआ कुछ पूछ रहा है। वह रथस्थ भुवनमोहन—वह तो मनुष्य नहीं, देवता नहीं—वह क्या है, कौन है—जब ऋषियोंके मानस भी इसे समझ नहीं पाते तो बेचारा आरण्य महोत्कट क्या समझे इसे। उसकी और उसके सहचरोंकी दृष्टि पड़ी और वे काष्ठकी मूर्तिकी भाँति निश्चेष्ट रह गये। उनसे हिला या बोला नहीं जा सकता था उस समय। उनके नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह चल रहे थे, शरीरका रोम-रोम पुलकित हो उठा था और वे भूल गये थे कि इन्द्रप्रस्थके मार्गपर रथपर बैठे हैं।

'मैं हूँ वासुदेव!' रथसे उतर पड़ा मयूरमुकुटी। 'सम्राट्ने मुझे अतिथियोंको अर्घ्य निवेदित करनेकी सेवा दी है। अतिथि-वर्गके चरणप्रक्षालन-कार्यका सौभाग्य प्राप्त है मुझे। आप मुझे अपना बन्धु समझें।'

दीनबन्धु वासुदेवको छोड़कर आरण्य असभ्य मानवका यहाँ इन्द्रप्रस्थमें भला दूसरा कौन बन्धु हो सकता है। अतिथिके चरण-प्रक्षालन—उसे अर्घ्यदानका कार्य उन वासुदेवको छोड़कर दूसरा कर कौन सकता था। यहाँ विश्वके सभी भागोंसे, सभी प्रकारके अतिथि आते थे, वहाँ उनका अग्रिम स्वागत कर सके, उनकी सुविधा समझ सके, इतनी शक्ति, इतना ज्ञान तो सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्को छोड़कर मानवमें पाया नहीं जा सकता।

वासुदेवके रथसे उतरते-न-उतरते महोत्कट और उसके सहचर रथोंसे कूद पड़े थे और भूमिमें गिर पड़े थे

प्रणिपात करते। अपना नामोच्चारण करने-जैसी शक्ति उनके गद्गद कण्ठोंमें आयी नहीं थी। उनमेंसे प्रत्येकको लगा कि वासुदेवने उसीको उठाकर पहले हृदयसे लगाया है।

'आप रथोंपर विराजें! आप सबको आवास देकर और अर्घ्य अर्पित करके मैं कृतार्थ बनूँगा।' श्रीकृष्णचन्द्र सर्वसुहृद् हैं। यह उनकी ही विशिष्टता है कि प्रत्येक मिलते ही उन्हें अपना आत्मीय समझ लेता है। 'जो भी आवश्यकता हो, आप निःसङ्कोच मुझे नहीं कहेंगे तो मुझे खेद होगा और मैं समझूँगा कि आप सब मुझे अपना बन्धु नहीं मानते।'

दो क्षणमें ही स्थिति बदल गयी थी। वही ऐश्वर्य—वही मानव-महासागर, वही अट्टालिकाओंकी पंक्तियाँ और वही क्षण-क्षणपर स्तब्ध करनेवाली शोभा-सम्पत्ति जैसे सामान्य हो गयी। उन आरण्य मानवोंके लिए भी जैसे कुछ अद्भुत, कुछ आश्चर्यजनक एवं कुछ कुतूहलप्रद नहीं रह गया। वासुदेव उनके अपने हैं—उन्होंने अनुभव किया इसे और इस अनुभवने जैसे इन्द्रप्रस्थके वैभवको सामान्य बना दिया।

उन्हें सम्राट्के क्रीडा-काननमें आवास मिला। आरण्य मानवका सुपास इससे अधिक नहीं हो सकता था। अट्टालिकाओंका आवास तो उसे आबद्ध कर लेता। मार्गमें उन सबको आतिथ्य मिला था, आदर मिला था और अकल्पनीय ऐश्वर्यके दर्शन हुए थे; किंतु इन्द्रप्रस्थमें

उनको वासुदेव मिले। वासुदेव—जो अनन्त ऐश्वर्य एवं सौन्दर्यके घनीभाव हैं। जिन्हें देखते ही विश्वका समस्त सौन्दर्य तथा समस्त ऐश्वर्य तुच्छ ही नहीं—हेय हो उठता है। वासुदेव—जो पूज्योंके भी परम पूज्य, वन्दनीयोंके भी परम वन्दनीय एवं सृष्टिके सर्वाधार हैं। वासुदेव—जो यह सब होते हुए भी सबके सुहृद्, सबके अपने हैं। आरण्य मानवोंको उनकी भाषामें उनसे बातचीत करनेवाले, उनके अपने जन-से वासुदेव मिले और वे जैसे कृतार्थ हो गये।

× × ×

धर्मराज युधिष्ठिरका यज्ञ सम्पन्न हुआ। सहस्र-सहस्र ऋषि-कण्ठोंसे निकले सामगानने अन्तरालको परिपूत कर दिया। आहुतियोंका भाग लेने सुर साकार हुए और परितृप्त होकर भी उन्होंने प्रयाण नहीं किया। अपने आसनोंपर वे शान्त आसीन रहे। आरण्य महोत्कट और उसके साथियोंने देखा कि भारतीय मानव केवल देव-मानव नहीं हैं, देवताओंके लिए भी वे आदरणीय हैं। देवता भी उनसे सत्कृत होकर कृतार्थताका अनुभव करते हैं।

समस्त यज्ञ-सम्भार, सम्पूर्ण कार्य-संचालन एवं सभी एकत्रित समुदायकी श्रद्धाके केन्द्र थे वासुदेव—भगवान् वासुदेव। नृपति, ऋषि एवं सुरसमूह – सब-के-सब उनकी स्तुति करते थकते नहीं थे। पाण्डवोंके तो वे सर्वस्व थे ही; किंतु प्रत्येक आगत यही समझता था कि वे उसके अपने ही हैं। उसीपर श्रीकृष्णका ममत्व है।

वे स्नेहमय, आनन्दघन भुवनमोहन वासुदेव—महोत्कट और उसके सहचरोंने राजसूयके उस अकल्पनीय सम्भार एवं क्रियाकलापमें वासुदेवको छोड़कर और कुछ नहीं देखा, यह कहना अत्युक्ति नहीं है। श्यामसुन्दर कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं, क्या कहते हैं—जब नितान्त निःस्पृह, ज्ञानघन महर्षियोंके नेत्र एवं श्रवण भी क्षण-क्षण इसी उत्सुकतामें एकाग्र रहते थे तो आरण्य सरल-हृदय मानवों-का मन उस विश्वविमोहनने आकर्षित कर लिया, इसमें आश्चर्य क्या ?

यज्ञ सम्पूर्ण हुआ। सदस्योंके पूजनका समय आया। 'प्रथम-पूजन किसका हो ? अग्रपूजाका सम्मान पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट् किसे दें ?' नरेशोंमें, ऋषियोंमें तथा विद्वद्वर्गमें काना-फूसी होने लगी। अनेक विकल्प प्रकट हुए। महोत्कट झुँझलाया—'ये इतने बड़े लोग, ऐसे विचारवान् इतने विचारहीन क्यों हो रहे हैं ? सर्वज्ञ कहे जानेवाले ऋषियोंको भी क्यों नहीं सूझता कि अग्रपूजा तो विश्वका सम्राट् विश्वके राष्ट्रपुरुषकी ही कर सकता है। जो सबसे समर्थ, सबसे महान् होकर भी सबका अपना है उस वासुदेवको ये देखकर भी क्यों नहीं देखते। वही तो हमारा राष्ट्रपुरुष है।' महोत्कटका मन कहता था कि वह उठ खड़ा हो और चिल्लाकर सम्राट्से कहे—'राष्ट्रपुरुष हैं वासुदेव और इस समय जब विश्व एकराष्ट्र हुआ है, राष्ट्रपुरुषके अतिरिक्त किसी दूसरेकी प्रथमपूजा सोची-तक नहीं जा सकती।'

भला हो सहदेवका। क्या हुआ जो वह अभी बालक है। उसने उठकर महोत्कटके मनकी बात कह दी—'श्रीकृष्णकी पूजामें ही सबकी पूजा है—सारे विश्वकी पूजा।'

पितामह भीष्म-जैसे विद्वान् एवं सर्वमान्य शूरने समर्थन किया—'सहदेव ठीक कहता है। वासुदेव ही प्रथम-पूज्य हैं।'

महोत्कटका हृदय उत्फुल्ल हो उठा। उसे कनिष्ठ पाण्डव सहदेवका शौर्य इतना रुचा कि वह अपने आसन-पर उठ खड़ा हुआ। कुछ असत् पुरुष भी थे उस सत्-समुदायमें। वासुदेवकी पूजाके विपक्षमें कुछ लोगोंने काना-फूसी प्रारम्भकी और कनिष्ठ पाण्डवका सिंहनाद सुनायी पड़ा—'हम श्रीकृष्णकी अग्रपूजा कर रहे हैं। जिनको यह न रुचता हो उनके मस्तकपर यह मेरा वाम-पाद!' महोत्कटने कठिनाईसे अपनेको रोका। वह दौड़कर कनिष्ठ पाण्डवको हृदयसे लगा लेनेके लिए पागलप्राय हो उठा था। वह जन्मजात शूर-शौर्यका समादर उसका स्वभाव जो है।

धर्मराज—विश्वसम्राट् धर्मराज युधिष्ठिर बैठ गये श्रीकृष्णचन्द्रके चारु चरणोंके समीप। सम्राज्ञी द्रुपदराज-कुमारीने रत्नपात्र उठाया और सुरभित निर्मल जलधारासे श्रीकृष्णके पावन पदोंको सम्राट् प्रक्षालित करने लगे। गगनसे दिव्य सुमनोंकी वृष्टि प्रारम्भ हो गयी।

पूजन पूर्ण होते ही सबने देखा—शिशुपाल खड्गको कोषसे खींचे अपने आसनसे उठ खड़ा हुआ है। क्रोधसे चीत्कार कर रहा है। वह कबसे इस प्रकार खड़ा है, यह अग्रपूजाके आनन्दोल्लासमें किसीने नहीं देखा है। लेकिन वह जो अपशब्द कह रहा है—कहता जा रहा है वासुदेव-को—महोत्कटके नेत्र अङ्गार बने। उसकी वज्र मुष्टियाँ बँधीं, वह अपने करोंमें पकड़कर पीस देगा इस बकवादी-को। उसके कर—केहरीको चीर फेंकनेवाले उसके कर शिशुपालको पकड़ भर पावें—लेकिन दूर है, बहुत दूर है शिशुपाल। वह बहुत आगे नरेशोंकी अग्रिम पंक्तियोंमें है। पाण्डवोंसे सम्बन्ध होनेका लाभ मिला है उसे। बेचारा आरण्य महोत्कट—लाख-लाख व्यक्ति उसके आगे बैठे हैं। वह अपने आसनपर खड़ा दाँतोंको पीस रहा है। मुट्ठियाँ उसकी कसती जा रही हैं और......।

'भगवान् वासुदेवकी जय !' क्या हुआ—किसीने स्पष्ट नहीं देखा। सहसा श्रीकृष्ण उठे। उन्होंने दक्षिण बाहु उठायी और जैसे भगवान् भुवनभास्कर यज्ञमण्डपमें उतर आये हों। असह्य तेजसे सबके नेत्र बन्द हो गये। जब नेत्र खुले—शिशुपालका शव छिन्नमस्तक पड़ा था। उसके शरीरसे एक तेज निकलकर श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रविष्ट होता लक्षित हुआ।

'हमारे वासुदेव ! राष्ट्रपुरुष वासुदेव !' जब समस्त सभासद् जयध्वनि कर रहे थे महोत्कट और उसके आरण्य सहचर अपने उद्दाम वन्यनृत्यमें निमग्न थे। आनन्दाति-

रेकमें भूल ही गये थे कि वे कहाँ हैं। सबने आश्चर्यसे देखा वे कहाँ हैं। सबने आश्चर्यसे देखा—अभी-अभी जिनकी अग्रपूजा हुई है, वे सर्वपूज्य सर्वाधार श्रीकृष्ण अपने सिंहासनसे उठकर सीधे उन आरण्य अतिथियोंकी ओर जा रहे हैं।

'बन्धु महोत्कट!' वासुदेवने महोत्कटके कन्धेपर अपना अरुण कर रखा—'मैं तुमलोगोंका अभिनन्दन करने आया हूँ।'

'राष्ट्रपुरुष वासुदेव!' महोत्कट एवं उसके सहचरोंका गद्‌गद स्वर सुनायी नहीं दे सकता था। गगन गूँज रहा था—'भगवान् वासुदेवकी जय!'

महान् उपहार

'दादा ! कल कन्हाईको क्या देगा तू ?' व्रजबालकोंमें सबसे छोटे, श्यामके सबसे प्रिय तोकने श्रीबलरामसे पूछा।

कल श्रीकृष्णचन्द्रकी वर्षगाँठ है। व्रजमें सभी कल उसे कुछ-न-कुछ उपहार देंगे। सबकी एकान्त अभिलाषा है कि वह ऐसा कोई उपहार दे, जिसे पाकर श्यामसुन्दर सर्वाधिक प्रसन्न हो। सप्ताहोंसे नहीं, महीनोंसे सबके चिन्तनका विषय यही रहा है—'इस वर्षगाँठपर क्या दें नन्दनन्दनको ?' अब कल ही वर्षगाँठ है। आज तोक दाऊसे पूछने बैठा है। दाऊ क्या देगा, यह पता लग जाय तो तोक भी कुछ निश्चय कर ले।

'मैं क्या दूंगा, बताऊँ ?' मधुमङ्गलने बीचमें ही छेड़ लिया।

'रहने दे !' तोकने तनिक घूमकर देखा उधर। 'तू देगा आशीर्वाद।'

'ब्राह्मणका आशीर्वाद यों ही नहीं मिला करता।' गम्भीरताका अभिनय किया मधुमङ्गलने—'आशीर्वाद तो तब मिलेगा, जब यह मुझे दक्षिणा देकर प्रणाम करेगा।'

'नहीं तो !' इस बार कन्हाई बोला ।

'हूँ !' घूसा दिखाया मधुमङ्गलने ।

'तो तू कल यही देना !' श्याम हतप्रभ हो नहीं सकता । वह हँस उठा । सचमुच कन्हाई ही ऐसा है, जो उपहारमें मीठी चपत या घूसा भी लेकर प्रसन्न हो सकता है । भीष्मके शराघातका उपहार जो स्वीकार कर सके, असुरोंके उन्मद आक्रमणको जो अर्चन मानकर उन्हें स्वधाम दे सके—कुछ अटपटा तो नहीं है उसके लिये यह उपहार भी ।

'दादा ! बता न, तू क्या देगा ?' तोकने दाऊका कन्धा पकड़कर हिला दिया ।

'मैं बताऊँ ?' श्यामने उत्तरकी अपेक्षा किये बिना बताया—'दादा देगा यह आजका अपना पुष्पमाल्य ।'

दाऊ क्या बताये ? उसका या व्रजमें किसीका ऐसा है क्या, जो श्यामका नहीं है । किंतु श्याम है ही ऐसा कि उसे तो कल कोई उसीका पटुका या उसीकी मुरली उठाकर दे दे तो उसे महान् उपकार मानकर खिल उठेगा । वह अभीसे अपने बड़े भाईकी उतारी पुष्पमाला माँगने लगा है । नित्य लोग उसे उसीकी वस्तुएँ तो भेंट करते हैं । ऐसी वस्तु कहाँसे आयेगी जो उसकी न हो ।

'तू क्या लेगा ?' दाऊ बतलाता नहीं तो तोक श्यामसे ही क्यों न पूछ ले ।

'मैं तुझे लूँगा।' कन्हाईने झटसे बिना सोचे उत्तर दे दिया।

'चल!' तोकको ऐसी बात रुची नहीं। ये सब बड़े वैसे हैं—कोई उसे सहायता नहीं देता कि वह कलका उपहार चुन सके। कन्हाईका वह कब नहीं है—वह तो सदासे श्यामका छोटा भाई है। उसे लेनेकी नयी बातका क्या अर्थ हो सकता है।

× × ×

'कौन हो तुम?' कटिमें फटा-सा मैला चिथड़ा, मस्तकपर रूखे धूलिभरे उलझे केश, कपोलोंपर अश्रुकी सूखी चमकती रेखा, इतना दुर्बल, इतना विषण्ण, इतना हतप्रभ बालक यह कौन है? व्रजमें ऐसा बालक! नन्हे तोकको आश्चर्य हुआ तो बड़ी बात क्या हुई। वह दौड़ गया और हाथ पकड़कर उसने बालकसे पूछा।

'तुम कहाँसे आये?' तोकने हाथ झकझोर दिया उस बालकका। यह बोलता क्यों नहीं? यह तो स्वप्नसे सहसा जाग्रत् हुएकी भाँति इधर-उधर बड़े आश्चर्यसे केवल देख रहा है।

'तुम किस गाँवके हो? गूँगे हो तुम? तुम्हें किसने मारा है?' तोकको अद्‌भुत लग रहा है यह बालक। यह इतना उदास और कङ्काल क्यों दीखता है? व्रजमें तो कोई भिक्षुक भी ऐसा नहीं होता।

कंसके अनुचरोंका अत्याचार चल रहा है चारों ओर। उसके क्रूर राक्षस गाँवोंको जला देते हैं, हरे वृक्षोंको काट देते हैं। मानवका रक्त—उनके लिए तो वह एक विनोद उत्पन्न करनेकी वस्तु है। कल जिसका घर असुरोंने भस्म कर दिया, जिसके स्वजन आततायियोंके द्वारा मार दिये गये, जो किसी प्रकार प्राण बचाकर भागा और पूरी रात्रि उन्मत्तकी भाँति भागता रहा बिना किसी लक्ष्यके, वह क्या कहे ? क्या बताये ?

वह बालक—वह आपत्तिका मारा, यमराजके अनु-चरों-जैसे दानवोंके आतङ्कसे अर्धमूर्छित बालक और वह आ कहाँ गया—यह सुषमा-सार-सर्वस्व व्रजधरा, ये कल्पपादपनिन्दक तरु-वल्लरियाँ और ये नर-नारी यदि मानव हैं तो देवता कौन होंगे ? इतना सौन्दर्य, इतना वैभव, इतनी प्रफुल्लता—बालक तो विमूढ़ हो रहा है।

सबसे बड़ी बात—यह नवघन-सुन्दर, पीत-वस्त्र, सौकुमार्यकी मूर्ति नन्हा चपल शिशु—जिसने बालकका हाथ सहसा पकड़ लिया है—बालक केवल देख रहा है तोककी ओर। उसकी वाणी असमर्थ है। उसके नेत्र झरने लगे हैं। वह केवल देख रहा है।

'तुम मेरे साथ आओ ! भूख लगी है तुम्हें ? रोओ मत, मैं तुमको मक्खन दूँगा।' तोक आतुर हो उठा है। वह इस बालककी पीड़ा कैसे दूर कर दे ?

'कनूं ! कनूं ! देख तो !' तोकने दूरसे ही पुकार लिया। तोक पुकारे और श्याम दौड़ न आये…।

'यह तेरा उपहार है !' नवीन बालक पता नहीं क्यों श्यामके चरणोंपर गिरने झुका और कन्हाईने उठाकर भर लिया उसे दोनों भुजाओंमें। अपने साथ आये बड़े भाईकी ओर देखता मोहन कह रहा था—'दादा ! यह तोकका उपहार—आजका सबसे महान् उपहार है न ?'*

---

* मत पूछिये कि यह घटना कहाँ किस पुराणमें लिखी है। यह कहानी है और सत्य घटना नहीं हुआ करती। घटना तो कहानीका सौन्दर्यमात्र है। कहानीका सत्य है उसकी प्रेरणा और शिवत्व है उसका वह प्रभाव, जो आपपर (पाठकपर) पड़ता है। श्याम सदा आतुर है अपनानेके लिए—सबको, जीवमात्रको अपनानेके लिए। वह जीवका नित्य-सखा—उसके लिए महान् उपहार है अपने-आपको उसे दे देना। इस कहानी-का सत्य यही है और यह नित्य-सत्य नहीं है, ऐसा आप कैसे कहेंगे। —लेखक

दूसरो न कोई

'वत्स ! यह सम्राट्का यज्ञीय अश्व है—सम्राट् धर्मराज युधिष्ठिरका !' महारानीने अपने कुमारको उत्साहमें भरे आते देखा तो वे चौंक पड़ीं। पुत्रका अभिनन्दन अभीष्ट नहीं था। 'तुम इसे क्यों पकड़ ले आये ?'

'मां ! मुझे किसीका अश्व नहीं चाहिए ; किंतु इसके मस्तकपर जो कुछ स्वर्णपत्रमें लिखा गया है, उसे पढ़कर तो देखो।' कुमार आवेशमें था। अभी वह बालक है। वह अपने आवेशमें कहता जा रहा है—'सम्राट्का अश्व है तो क्या हो गया। युधिष्ठिरजी सम्राट् हैं, इसीसे तो उन्हें अधिकार नहीं कि वे हमारा अपमान करें। हमको सम्राट्की आवश्यकता नहीं है। हमारे चाचाजी हैं न—हमें उनको छोड़कर और कोई नहीं चाहिए और वे हैं तब सम्राट्से मैं कहाँ डरता हूँ।'

'चाचाजी तो हैं ?' महारानीका कण्ठ भर आया। उनको छोड़कर और अपना है ही कौन ; किंतु इस अश्वको तुम पकड़ोगे तो युद्ध होगा। अश्वके पीछे ही उसके

रक्षक आते होंगे। सम्भावना यही है कि गाण्डीवधन्वा अर्जुन ही प्रमुख अश्व-रक्षक हों।

'मेरे पिताने युद्धमें प्राण दिये हैं! मैं युद्धसे डर जाऊँ तो तुम मुझे अपना पुत्र कहोगी माँ? और चाचाजी ही क्या कहेंगे?' बालकने कन्धेपरसे ज्यासज्जित छोटा-सा धनुष उतारकर हाथमें ले लिया—'अश्वरक्षक अर्जुन ही हैं, मैंने लोगोंसे यह सुन लिया है। किंतु उनके पास गाण्डीव है तो मेरे पास ही धनुषका अभाव कहाँ है?'

'अर्जुन तुम्हारे चाचाजीके सखा हैं!' महारानी कैसे समझायें अपने इस दसवर्षीय किशोरको, समझ नहीं पाती हैं। उनके पतिदेव महाभारत-युद्धमें धर्मराजकी सहायता करने गये थे पूरी सैन्यशक्तिके साथ। कोई भी तो लौटा नहीं उस युद्धसे। एक भी सैनिक समाचार देने नहीं लौटा। समाचार तो मिला सम्राट्ने अभिषेकके पश्चात् जो चर भेजा, उसके द्वारा। वह महाविनाश और आज उनका एकमात्र आधार यह कुमार फिर धनुष उठाये युद्धका आह्वान कर रहा है?

महारानी सती नहीं हो सकीं। पतिदेह मिल भी गया होता वे सती नहीं हो सकती थीं। पतिदेवने यह जो अपने वंशधरको उनकी गोदमें दे दिया था—तब यह केवल छः महीनेका शिशु था, जब महाराजने अन्तिम बार इसे गोदमें लेकर स्नेहसे सिर सूँघा इसका और कुरुक्षेत्रको प्रस्थान किया। जाते-जाते वे आदेश दे गये—

'इसकी सावधानीपूर्वक रक्षा करना। यही अपने पितरों-को परित्राण देगा।'

महारानी अपने इस लालका मुख देखकर पतिका बियोग झेल गयीं। अब यह दस वर्षका हुआ और फिर युद्ध ! बड़ा हठी है—बड़ा निष्ठुर है क्षत्रियका धर्म भी। कुमारने अश्वको पकड़कर अधर्म तो किया नहीं है। उसे रोक दिया जाय ? अश्व छोड़ देनेकी आज्ञा दे दी जाय ? हृदय यह भी तो स्वीकार नहीं करता। क्षत्राणी क्या मोहको कर्तव्यके ऊपर विजय पाते देख सकेगी ?

कुमार मान ही जायगा अश्व छोड़नेकी आज्ञा—इसका भी विश्वास कहाँ है। वह कहता है—'अर्जुन होंगे चाचाजीके मित्र ; किंतु चाचाजी तो मेरे हैं, मेरे नहीं हैं क्या वे ?'

'नहीं क्यों होंगे !' महारानीने दृढ़ स्वरमें कह दिया—'वे तुम्हारे ही हैं।'

महाराज युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया था। स्वर्गीय महाराजके साथ महारानी भी गयी थीं उस समय इन्द्र-प्रस्थ। राजसूयकी महापरिषद्ने जिसको प्रथम पूज्य माना, वही मयूरमुकुटी, इन्दीवरसुन्दर नगर-प्रवेश करते ही उनका स्वागत करने आया था। उस द्वारिकेशने—हृषीकेशने कहिये, अतिथियोंके चरण धुलानेकी सेवा ले रक्खी थी।

'भाभी !' महाराजको पाद्य-निवेदन करके वह महा-रानीके सम्मुख आया और उसका वह नित्य प्रफुल्ल

श्रीमुख, उसकी वह त्रिभुवन-मोहन छटा। उसका वह सम्बोधन-स्वर—महारानीके प्राणोंमें वह सम्बोधन बस गया। वे आत्मविस्मृत खड़ी रह गयी थीं और आज भी वे विभोर हो जाती हैं उस सम्बोधन-स्वरका स्मरण करके !

'भाभी !' क्या हुआ कि श्रीकृष्णने केवल एक बार ही उन्हें इस प्रकार पुकारा था। क्या हुआ कि राजसूयकी व्यस्ततामें फिर मुकुन्दसे मिलनेका सौभाग्य नहीं मिला। क्या हुआ कि यज्ञान्तमें भी दूरसे ही उस कमललोचनके दर्शन करके विदा लेनी पड़ी। श्रीकृष्णकी वाणी तो असत्यका स्पर्श नहीं करती। उन लोकनाथने एक बार तो पुकारा था भाभी कहकर।

'माँ, मेरे और कोई नहीं है। अकेली तू है मेरी।' कुमारने अपने शैशवमें एक दिन कहा था। कितना खिन्न स्वर था उसका। महारानीने उसी दिन कुमारको बताया—'फिर ऐसी बात मत कहना। तुम्हारे चाचा हैं—स्नेहमय, सर्वसमर्थ चाचा। वे तुम्हारे ही हैं।'

'मेरे चाचा ! कौन हैं वे ? कहाँ रहते हैं ? कैसे हैं ? यहाँ क्यों नहीं आते ?' शिशुने प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी थी और महारानीने गद्‌गद स्वरसे उस अद्‌भुत देवरका वर्णन किया था। माता-पुत्रमें यह वर्णन एक दिनका कहाँ रह गया। बार-बार प्रायः पुत्र अपने चाचाके विषयमें पूछता और माता बतलाते थकती नहीं।

'श्रीकृष्ण तुम्हें शीघ्र दर्शन देंगे !' अभी पिछले वर्ष महर्षि दुर्वासा आशीर्वाद दे गये कुमारको और आज यह धर्मराजका यज्ञीय अश्व—तो इस प्रकार पार्थ-सारथिके दर्शन करेगा यह ?

'मैं देख लूँगा अर्जुनको और उनके गाण्डीवको भी ? कुमार अपना नन्हा धनुष लिए अश्वको बाँधने चला गया है अश्वशालामें। वह बचपनसे अदम्य है। उसके आग्रह-को महारानी प्रायः टाल नहीं पातीं।

पिछले वर्ष महर्षि दुर्वासा अकस्मात् आ गये थे। वे आये दिनमें तब, जब भोजनशाला स्वच्छ हो चुकी थी और अर्घ्य स्वीकार करनेसे पूर्व ही आदेश दिया—'मुझे अभी गरम खीर चाहिये ! बहुत क्षुधातप्त हूँ।'

'आप आसन ग्रहण करें ! अभी प्रस्तुत होता है नैवेद्य !' महारानी और कह भी क्या सकती थी।

'मुझे क्षणोंका विलम्ब भी असह्य है !' महर्षिने नेत्र कड़े किये—'दुर्वासाका कोप त्रिभुवनविख्यात है !'

'आप अकारण रुष्ट हुए जा रहे हैं !' कुमार बालक ही तो है। महर्षि आतङ्कित करना चाहते हैं, यह उसे अच्छा नहीं लगा और बोल उठा—'भय दिखलाकर तो आप कुछ हमसे नहीं करा सकते !'

'इतना साहस ! इतना अपमान मेरा ?' महर्षिने जल ले लिया कमण्डलुसे हाथमें। महारानी उनके चरणों-में गिर पड़ीं ; किंतु उधर भला वे क्यों ध्यान देते।

उनका रोषकम्पित स्वर गूँजा—'किस बलपर तू यह अहङ्कार दिखला रहा है ?'

'चाचाको छोड़कर हमारा और है भी कौन !' कुमार निर्भय खड़ा रहा। माँने बार-बार कहा है कि उसके चाचा सर्वलोकमहेश्वर हैं, यज्ञ और तपके परम भोक्ता वही हैं, तब ये महर्षि उसका बिगाड़ क्या सकते हैं ?

'कौन है तेरा चाचा ?' महर्षि दुर्वासा सम्भवतः उसे भी शाप देनेकी बात सोच चुके थे।

'श्रीकृष्णचन्द्र !' कुमारका स्वर अविचल था।

'श्रीकृष्णचन्द्र !' महर्षिके नेत्र सीधे हो गये। अञ्जलिका जल धीरेसे उन्होंने अपने कमण्डलुमें ही डाल लिया। उनकी वाणीमें पता नहीं, कैसे रोषके स्थानपर स्नेहकी धारा उमड़ आयी—'तुमने उन हृषीकेशको देखा है वत्स ?'

'यह सौभाग्य मुझे अभीतक नहीं मिला !' कुमार भी विनम्र हो गया। 'लेकिन वे मेरे चाचा हैं। निश्चय वे मेरे हैं।'

'तुम्हें उनके शीघ्र दर्शन होंगे।' महर्षिने शापके स्थानपर वरदान दे दिया। 'तुम मुझे क्षमा कर दो ! श्रीकृष्ण निश्चय तुम्हारे हैं और उनके जनोंपर रोष करनेका साहस अब मुझमें कभी नहीं आयेगा !'

महर्षिने सानन्द प्रसाद ग्रहण किया था। वे पुनः शीघ्र श्यामसुन्दरके दर्शनकी बात कह गये थे और आज

युद्ध आ गया अपने प्राङ्गणमें। महारानीको पता ही नहीं लगा इस तन्मयतामें कि उनका कुमार अपना नन्हा धनुष लेकर राजसदनसे बाहर भी जा चुका है।

× × ×

'पार्थ ! एक अनस्त्र बालकपर दिव्यास्त्र उठाते तुम्हें लज्जा नहीं आयी।' उस मेघ-गम्भीर स्वरको पहचानना नहीं पड़ता। दारुक पूरे वेगमें रथ दौड़ाता आ रहा है। पाण्डव-सेनाने सादर मार्ग छोड़ दिया है। अचानक श्रीकृष्णचन्द्र यहाँ आयेंगे, सम्भावना भी किसीको नहीं थी।

'गाण्डीवधारी कलको प्रद्युम्न अथवा साम्बपर भी इसी प्रकार दिव्यास्त्र उठा सकते हैं।' स्वरमें झिड़की है, रोष है, व्यङ्ग है और पता नहीं क्या-क्या है। लज्जित अर्जुनने अपना दिव्यास्त्र फिर त्रोणमें पहुँचा दिया है।

'श्यामसुन्दर !' बड़ा खिन्न, शिथिल स्वर धनंजयका था। वे इस दसवर्षीय बालकसे युद्ध करनेको विवश हुए थे। उन्होंने कितना चाहा था कि युद्ध टल जाय। बालक अद्भुत शूर है। पार्थ हृदयसे उसके प्रशंसक हैं। अकेले बालकने प्रायः पूरी पाण्डव-वाहिनीको त्रस्त कर दिया था। आधे मुहूर्तमें रणभूमि टूटे रथों, मरे गजों एवं अश्वोंसे पट गयी। बालकके शरोंने सैनिकोंके शव बिछा दिये। अन्तमें अर्जुन आगे बढ़े थे। उन्होंने सेनाको रोक दिया था युद्ध करनेसे।

'कहीं भगवान् पिनाकपाणि ही तो बालकका वेश बनाकर धनुष लिए युद्ध करने नहीं आ गये हैं।' अर्जुनको सचमुच सन्देह हो गया था। बालक उनके शरोंके टुकड़े उड़ाये दे रहा था। उसके छोटे-से धनुषसे छूटे बाण गाण्डीव-धन्वाका कवच फोड़कर सीधे शरीरमें घुस जाते थे। रक्त झरने लगा था पार्थकी देहसे। वे अत्यन्त आहत हो चुके थे। सामान्य शरोंसे काम न चलते देखकर ही उन्होंने गान्धर्वास्त्र उठाया था; किंतु यह मयूरमुकुटी उनका सखा तो रुष्ट हो गया लगता है।

'श्यामसुन्दर !' अर्जुनने धनुष रख दिया और पुकारा; किंतु श्रीकृष्णचन्द्रका रथ तो आगे ही बढ़ा जा रहा है। उन्होंने किसीका अभिवादन आज स्वीकार नहीं किया। पार्थकी पुकारपर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया।

'चाचाजी !' सहसा विजयकी दृष्टि आगे गयी। बालक धनुष फेंककर रथसे कूद पड़ा है। साथ ही वे कूदे मयूरमुकुटी। दारुकने रथको रोक लिया है और वे दौड़े जा रहे हैं द्वारिकानाथ दोनों भुजाएँ फैलाये।

'वत्स !' बालकको पदोंमें पड़नेका अवकाश नहीं मिला। श्यामसुन्दरने उसे हृदयसे लगा लिया है भुजाओं-में भरकर। सम्भवतः उनके कमललोचनोंसे स्नेहके सुधा-कण झर रहे हैं। उनका गद्गद स्वर सुनायी पड़ा—'मुझे तनिक विलम्ब हो गया आनेमें बेटा !'

अर्जुन समझ नहीं पाते कि बात क्या है। श्यामसुन्दर-की गति कभी किसीकी समझमें कहाँ आती है। पार्थने

रथ आगे बढ़ा दिया है। अपने सखाके समीप उन्हें जानेमें कब हिचक हुई।

'धनञ्जय!' सहसा पटुकेसे नेत्र पोंछते, बालकका हाथ अपने हाथमें लिए श्रीकृष्णने पीछे मुड़कर देखा—'यह भी मेरा ही राज्य है। द्वारकासे अधिक मेरा है यहाँ। आज धर्मराजके सैनिक राजसदनमें मेरा आतिथ्य स्वीकार करें।'

बालक गद्गद हो रहा है। एक शब्द उसके कण्ठसे निकल नहीं पाता है। वह जो कुछ कह सकता था, श्याम-को वाणीकी अपेक्षा कहाँ है। वे उन अनकहे भावोंको स्वीकृति दे रहे हैं अपने-आप।

'अर्जुन! मैं भाभीके चरणोंमें प्रणाम करने जाता हूँ।' बालकको अपने ही रथपर बैठा लिया उस भुवनेश्वरने—'तुम मेरा आतिथ्य स्वीकार करोगे न?'

इस आतिथ्यको अस्वीकार करे, इतना अज्ञ कौन होगा। यह आमन्त्रण ही था अर्जुनका अहोभाग्य।

अवतार

'संसारके प्राणी अत्यन्त दुःखी हैं दयाधाम !' देवर्षि नारद गोलोकेश्वरका सत्कार स्वीकार करके आसनपर आसीन हो गये थे और कुशल-प्रश्नका अवकाश दिये बिना ही उन्होंने स्वतः प्रार्थना प्रारम्भ कर दी—'आपकी अहैतुकी कृपाके अतिरिक्त उनका और कोई आश्रय नहीं है।'

'मैं कृपा-कृपण नहीं हुआ हूँ देवर्षि !' तनिक मुस्कराये मयूरमुकुटी—'जीवोंके परम कल्याणके लिए श्रुतिकी शाश्वत वाणी मैंने पूर्वसे उन्हें प्रदान की। सृष्टिके प्रारंभ-में ही मैं स्रष्टाको वेद-ज्ञान दे देता हूँ, जिससे जीवोंको अज्ञानके अन्धकारमें भटकना न पड़े।'

'वे अब भी भटक रहे हैं।' कृपाकी अतिशयताके कारण नारदजीके नेत्र टपकने लगे—'जप-तप, योग-यज्ञ आदिमें प्रथम तो उनकी प्रवृत्ति नहीं होती और कदाचित् हो भी गयी तो आपकी लोकविमोहिनी मायाके प्रलोभन कहाँ कम हैं। भोग, यश, स्वर्ग और कुछ न हो तो अहङ्कार—इन पाशोंसे परित्राण कैसे पायें वे दुर्बल ?'

'अन्ततः आप चाहते क्या हैं ?' सीधा प्रश्न किया गया। श्रीनारदजीका क्या ठिकाना कि कब उठ खड़े हों। उनको कहीं स्थिर बैठना आता नहीं। उनकी खड़ाऊँ हिलने लगी है। दूसरे, ये लम्बी चुटियावाले वीणाधारी विचित्र स्वभावके हैं। इधरकी उधर लगानेमें, पहेली बुझानेमें इन्हें आनन्द आता है। क्या पता कब कह दें कि आगेकी बात अपने आप समझो। अभी सानुकूल हैं। अतएव अभी सीधे ही पूछ लेना अधिक उपयुक्त था।

'मेरे चाहनेका कोई महत्त्व नहीं।' देवर्षिने उलाहना नहीं दिया। वे प्रार्थनाके स्वरमें ही बोल रहे थे—'आप सर्वज्ञ हैं; किंतु जीव इसे समझ नहीं पाते। उनके मध्य आप पधारो और स्वयं अपने व्यक्त दृगोंसे उन्हें देखो। वे आपके परम मङ्गलायतन स्वरूपका दर्शन करें। आपके व्यक्त सगुण-साकार श्रीविग्रहके रुचिर क्रीड़ा-विहारोंका आधार मिले उनके चञ्चल चित्तको। तब कहीं माया भगवती भी कुछ संकुचित होंगी, कुछ कृपा करना आवेगा उन्हें।'

पीताम्बरधारीने तनिक देखा निकुञ्जेश्वरीकी ओर। तात्पर्य स्पष्ट था—'इनकी छाया-शक्ति ही माया है। आप इनसे क्यों नहीं कहते ?'

'ये नित्य प्रेमस्वरूपा—इन्हें तो स्नेह ही देना आता है !' देवर्षिने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया—'आपकी क्रीड़ा-प्रियतामें बाधा न पड़ती; इन्होंने कहाँ कब उपेक्षा सीखी है किसीकी। इनके स्मरणसे मायाका

अन्धकार तिरोहित होता है ; किंतु जीवोंका अभाग्य—वे स्मरण ही कहाँ कर पाते हैं। उनके लिए स्मरणका स्पष्ट, व्यक्त, सुरम्य, आधार प्रदान करने आप स्वयं धरापर पधारें देव !'

'आपकी इच्छा पूर्ण हो !' देवर्षिने वीणा तब उठायी, जब सर्वेश्वरके श्रीमुखसे यह सुन लिया।

× × ×

'मैं बार-बार धरापर गया और मैंने जीवोंके कल्याण-के साधन उन्हें प्रदान किये।' युगोंके पश्चात् देवर्षि फिर गोलोक पधारे थे और इस बार श्यामसुन्दर स्वतः बता रहे थे—'मानव कर्ममें नित्य स्वतन्त्र है और वह उन्हीं कर्मोंको प्रिय मानता है, जो उसके बन्धनको और दृढ़ करते हैं। वह अपने क्लेशको बढ़ानेमें लगा है। मेरी ओर देखनेका तो जैसे उसके पास समय ही नहीं।'

'आपने महामत्स्यरूप धारण किया और मानवके एक आदिपुरुषको स्वतः श्रीमुखसे धर्मका उपदेश किया !' देवर्षिकी वाणीमें इस बार व्यङ्ग था—'मानवका अभाग्य कि वह उस धर्मकी ओर ध्यान नहीं देता और ध्यान नहीं देता प्रलयाब्धिविहारी महामत्स्यकी ओर।'

'देवर्षि ! मैं मत्स्यावतार, वाराहावतार या वामन अथवा नृसिंहावतारकी चर्चा नहीं कर रहा हूँ।' श्रीकृष्ण-चन्द्र खुलकर हँसे—'ये अवतार मनुष्योंके मध्य नहीं हुए और मानव इनमें आकर्षण न पाये तो उसे दोष देनेका कारण नहीं है।'

'मनुष्यके कल्याणके लिए आप गृहत्यागी बने और नर-नारायणरूपसे आपने दीर्घकालीन तपस्या की। कपिलरूपमें आपने तत्त्वका प्रसंख्यान किया और तपका आदर्श स्वत: उपस्थित किया।' देवर्षिका स्वर परिवर्तित नहीं हुआ—'कूर्म, यज्ञ, हयशीर्ष, मोहिनी अवतारकी चर्चा आप करेंगे नहीं; क्योंकि वे भी मनुष्योंके मध्य नहीं हुए। यही अवस्था हंस, धन्वन्तरि-जैसे अवतारोंकी है और प्रभु! ऋषभरूपसे भी वही तपका आदर्श दिया आपने। मानव तप कर नहीं पाता। थोड़ेसे ऋषियोंके वशका है तप। जहाँ वह अपनेको समर्थ नहीं पाता, वहांसे उदासीन तो होगा ही।'

'आप अपनेको और अपने अग्रज सनकादि कुमारोंको गणनामें लेनेवाले नहीं हैं। परशुरामका अवतार साधन प्रदान करनेके लिए हुआ नहीं। आगे भी बुद्ध तथा कल्कि-अवतार प्रयोजनविशेषसे होने हैं तथा गजेन्द्रके उद्धार या ध्रुवके लिए हुए अवतारकी बात भी मैं नहीं करता।' इस बार श्रीभगवान्का स्वर गम्भीर हो गया—'आप चाहें तो कह सकते हैं कि पृथुके रूपमें भी मैं सत्ययुगमें धरापर गया और यज्ञका ही विशेषरूपसे मैंने प्रतिपादन किया; किंतु मैंने त्रेतामें मानवको सम्यक् आदर्श देनेमें कहाँ त्रुटि की देवर्षि? मैंने सम्पूर्ण मानव-चरितको क्या उचितरूपमें अयोध्यामें उपस्थित नहीं किया?'

'मन्दप्रज्ञ ही मर्यादापुरुषोत्तमके मङ्गल चरितमें त्रुटि देखते हैं!' देवर्षिके स्वर श्रद्धाभरित हुए—'आप अनन्त

कृपा-पयोधि हैं, इसीलिए तो यह जन इन श्रीचरणोंमें पुन: जीवोंपर कृपा-याचना करने उपस्थित हुआ है।'

'तब आप चाहते हैं···।' श्यामसुन्दरकी बात पूरी नहीं हुई। देवर्षिने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया।

'कलि-कलुष मानवको मर्यादामें रहने नहीं देता देव! आपके भुवन-पावन चरित उसे निर्मल करते हैं और आपका वह पावन 'राम' नाम निखिल पाप-तापका विनाशक है। आपने मानवके समस्त वर्गोंके लिए सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान एवं साधन-प्रणाली अपने कृष्णद्वैपायन रूपसे सुगम कर दी है; किंतु···।' दो क्षण रुककर पुन: बोले देवर्षि—'यदि आप अपने इन त्रिभुवनमोहन रूपसे पधारते! यदि अपने इन दिव्य चरितोंको प्रकाशित करते धरापर, जो श्रवणमात्रसे चित्तको अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।'

'प्रेम मानवको श्रीचरणोंकी ओर अधिक आकर्षित करता है मर्यादाकी अपेक्षा और भक्तिदेवीपर आपका सर्वाधिक अनुग्रह भी है।' देवर्षिने इस बार श्रीनिकुञ्जेश्वरीके पाद-पङ्कजोंकी ओर मस्तक झुकाया—'महाभावका आलोक यदि एक बार धराको धन्य कर जाता।'

'इसका अर्थ है कि अंश और कलाका अवतरण देवर्षिको सन्तुष्ट नहीं कर सका है। आदर्शकी मर्यादासे भी ये नित्य अवधूत कुछ अधिक चाहते हैं; किंतु महाभाव···' मयूरमुकुट उन महाभावकी नित्यमूर्ति अपनी अभिन्न सहचरीकी ओर झुका—'वह तो अन्यत्र व्यक्त

नहीं होता। उसका आलोक धरापर यदि व्यक्त होता है तो वह दूसरेमें व्यक्त हो, यह कैसे हो सकता है। आप धरापर पधारेंगी ?'

'अस्वीकृति मैंने कभी सुनी नहीं।' देवर्षि बीचमें ही बोले—'अनन्त स्नेह, अनन्त कृपा और अनन्त वात्सल्य जहाँसे शिशु पाता है, वहाँ उसकी याचना पूर्व-स्वीकृत ही रहती है।'

'एवमस्तु' सुननेकी भी अपेक्षा देवर्षिने नहीं की। वे वीणा करोंमें उठा चुके थे और उठ चुके थे आसनसे। उनकी अंगुलियाँ वीणाके तारोंसे उल्लासपूर्ण झंकृति गुञ्जित करने लगी थीं। भला कहीं किसीकी आकांक्षा इन चारु चरणोंतक पहुँचकर भी कभी अपूर्ण रही है ?

दैहिक साधन

'वत्स ! तुम यह श्रम प्रतिदिन क्यों करते हो ?' महर्षि शाकल्य जबसे इस वनमें आये और उन्होंने इस जलस्रोतके समीपकी गुहाको अपना साधनस्थल बनाया, यह वृद्ध वनवासी कोल उनके यहाँ सूखी समिधाएँ, कन्द और फल प्रतिदिन रख जाता है। वह आता है, भूमिमें मस्तक रखकर ऋषिको प्रणाम करता है, अपना गट्ठर एक ओर रखता है। समिधाएँ एक ओर, कन्द और फल तथा कुछ बड़े-बड़े पत्ते एक ओर रखकर गुहाके आस-पासकी भूमि बुहारने लगता है और यह काम पूरा करके फिर भूमिपर मस्तक रखकर चला जाता है।

वृद्ध कोलको इससे कुछ मतलब नहीं है कि ऋषिने उसे देखा या नहीं। वह न एक शब्द बोलता है और न इसीकी अपेक्षा करता है कि ऋषि उसे आशीर्वाद दें। अनेक बार ऋषि उसे गुफामें नहीं दीखते। वह सदा एक ही समयपर नहीं आ पाता। ऋषि स्नान करते होते हैं या वनमें गये होते हैं। वह वैसे ही गुफाकी ओर मुख करके ऋषिके आसनको प्रणाम करता है आनेपर और जाते समय भी। उसने अपने आप एक सीमा मान ली है।

गुफाके आस-पासके उतने क्षेत्रसे वह बाहर ही रहता है और उससे बाहरके ही क्षेत्रको स्वच्छ करता है। उसे लगता है—उसके अपवित्र देहकी छाया ऋषिके हवनादि स्थलपर नहीं पड़नी चाहिए।

वर्षा-आँधी और शीत—वनवासी जातियोंके लिए ये कोई बाधाएँ नहीं हैं। प्रकृतिकी उन्मुक्त गोदमें खेलना उन्होंने जन्मसे सीखा होता है। वृद्ध प्रबल वर्षामें भी किसी दिन रुका नहीं। वह तो तब भी नहीं रुका था, जब उसका देह ज्वरसे तप रहा था। उस दिन भी उसने अपने स्थानपर अपनी पत्नी या पुत्रको ऋषिके लिए काष्ठ ले जाने नहीं दिया था।

महात्माओंकी दशा भी विचित्र है। सृष्टिकर्ता भी नहीं जानते कि ये बाबाजी लोग कब क्या करेंगे। नहीं ध्यान देंगे तो पूरी प्रलय हो जाय, आँख उठाकर देखनेकी आवश्यकता इन्हें नहीं जान पड़ेगी, और ध्यान देंगे तो एक टाँग टूटी चींटीकी सेवामें भी अपने देहको भूल बैठेंगे। महीनों हो गये इस वृद्धको लकड़ियाँ और कन्द लाते, महर्षि शाकल्यको यही पता नहीं लगा कि कोई उनकी सेवा कर रहा है। आज इधर ध्यान गया उनका तो वृद्धको देखते ही आसनसे उठे और सीधे उसके सामने आ खड़े हुए।

'क्या चाहिए तुम्हें ?' अब देवाधीशको भी भय लगना चाहिए। महर्षिका क्या ठिकाना। वे इस काले-कलूटे, लँगोटीधारी बूढ़े कोलको सशरीर—इसी देहसे इन्द्रासन-

पर बैठनेका वरदान दे दें तो सृष्टिमें उनका प्रतिवाद करनेवाली शक्ति कहाँसे आयेगी ?

'डरो मत ! हिचको मत ! तुम्हें जो कुछ माँगना हो माँगो !' सुप्रसन्न तपस्वीके अभय स्वर—कोई सुर भी इसकी स्पृहा ही कर सकता है।

'इस वनमे कन्द और फल बहुत हैं।' वृद्धने बड़ी नम्रतासे कहा—'आपकी कृपासे मेरे दोनों पुत्र स्वस्थ बलवान् हैं। वे मेरा आदर करते हैं। मुझे तो कुछ भी नहीं चाहिए।'

'तुम यह मेरी सेवा प्रतिदिन क्यों करते हो ?' महर्षि भी इस अशिक्षित, असंस्कृत वन्य मानवकी निष्कामतासे चकित रह गये थे।

'मेरा बाप मरने लगा था तो उसने मुझसे कहा था' वृद्धने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'कभी कोई ऋषि-मुनि इस वनमें आ जायँ तो अपने बनते उनकी सेवा करना। मुनियोंकी सेवासे भगवान् प्रसन्न होता है।'

'मैं और सेवा कर भी क्या सकता हूँ ? आपके चरण भी छू जायँ तो आपको स्नान करना पड़े।' वृद्ध कह रहा था—'लकड़ियाँ और ये कन्द तो वनके हैं। इनमें मेरा क्या है। लड़कोंको मैंने कह दिया है कि 'एकल, सुअर, लागू पड़नेवाले बाघ आदिको वे यहाँसे दूर खदेड़नेमें भूल न करें।'

'भगवान् प्रसन्न हो जायँ तो तुम उनसे क्या चाहोगे ?' महर्षिको लगा, यह वृद्ध समझता नहीं कि ईश्वरीय

सृष्टिमें जो कुछ भी मनुष्य प्राप्त कर सकता है, वह सब देनेकी क्षमता उनमें है।

'भगवान् सब संसारको बनाता है। सबका पालन करता है। वह यह सब करते हुए बहुत-बहुत थक जाता होगा।' वृद्धने बड़े सरल भावसे कहा। 'वह प्रसन्न रहे तो उसे थकावट नहीं लगेगी। मैं जब आनन्दमें रहता हूँ, कितना भी ढेर-सा काम करूँ। थकता नहीं हूँ।'

'तुम तो भगवान्के भी सेव्य हो।' वृद्ध कोलकी समझमें नहीं आया कि इन ऋषिने क्यों उसको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उसने तो घबराकर भूमिमें सिर रक्खा घुटनोंके बल बैठकर और शीघ्रतासे लौट पड़ा अपनी झोपड़ीकी ओर।

× × ×

'तुम्हारी झोपड़ी कहाँ है?' दूसरे दिन जब वृद्ध कोल लकड़ियाँ लेकर आया, उसे लगा कि महर्षि शाकल्य उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसने जैसे ही भूमिपर मस्तक रक्खा, महर्षि आसनसे उठ आये। उन्होंने क्या आशीर्वाद दिया, वृद्ध समझ नहीं सका; किंतु ऋषि तो उससे उसका निवास पूछ रहे थे।

'यहाँसे एक कोस दूर, नालेके किनारे हम कोलोंके झोपड़े हैं।' वृद्धने प्रार्थना की—'पापी पेटके लिए हम वनवासी लोग पशुओंको मारते हैं। वहाँ आसपास

अस्थियाँ पड़ी हैं और हमारे आवास बहुत अपवित्र हैं। आप यहाँ पधारें, ऐसा स्थान वह नहीं है।'

'भगवान् श्रीद्वारिकानाथ इन्द्रप्रस्थ आये थे धर्मराज युधिष्ठिरके समीप।' महर्षि शाकल्यने कहा—'आज एक परिव्राजक अतिथि पधारे थे। उन्होंने बताया कि वे धनञ्जयको साथ लेकर आखेट करने निकले हैं। यद्यपि उनका आखेट-शिविर यहाँसे पर्याप्त दूर है; किंतु अर्जुन-के रथके लिए यह दूरी गणना करने योग्य तो नहीं है।'

'मैंने अपने बापसे सुना है, महाराज पाण्डु हमारे स्वामी थे।' वृद्ध हर्षित हो गया था—'पाण्डुपुत्र अर्जुन इधर आवें तो उनकी पद-वन्दनाका भाग्य मिलेगा इस अधमको और भगवान् तो आप-जैसे महात्माके यहाँ आवेंगे ही।'

'श्रीकृष्ण इस आश्रमपर आवें—इसकी मुझे सम्भा-वना नहीं है।' वृद्ध कोल ऋषिकी बात सुनकर उनका मुख देखता रह गया। ऋषि सर्वज्ञ हैं, अतः ठीक ही कहते होंगे। लेकिन जब ऋषिका दर्शन करने अर्जुन-श्रीकृष्णके आनेकी आशा नहीं है, उनके दर्शन होनेकी उसे भी क्या आशा है। उसका उत्साह शिथिल हो गया। वह राज-शिविरमें जानेका साहस अपनेमें नहीं पाता है।

'कल तुमने मुझसे कुछ माँगा नहीं।' महर्षि अद्भुत भरे-भरे स्वरमें बोल रहे थे—'आज मैं तुमसे माँग रहा हूँ, तपस्वीकी माँगको अस्वीकार मत करना।'

'आज्ञा भगवन् !' वृद्ध तो लगभग भयसे काँपने लगा। ऋषि इस प्रकार क्यों उससे बोल रहे हैं। ऐसी क्या बात है, जिसके लिए वे उसे सीधे आज्ञा नहीं दे सकते।

'श्रीकृष्ण तुम्हारे झोपड़ेमें आवें तो उनसे अनुरोध करना कि वे इस ओरसे निकलें।' महर्षिने अत्यन्त विनीत स्वरमें यह बात कही।

'भगवान् मेरे झोपड़ेमें आयेंगे ?' वृद्ध जैसे आकाशसे नीचे गिरा हो, इस प्रकार चौंका।

'वे तुम्हारे वहाँ आये बिना वनसे इन्द्रप्रस्थ लौट नहीं सकते।' महर्षि कह रहे थे—'कौन जाने, तुम्हारे झोपड़े-तक आनेके लिए ही उन्होंने यह आखेटका बहाना बनाया हो। मैं कल ही समझ गया था कि इस वनमें श्रीकृष्णको आकर्षित करनेकी शक्ति कहाँ है।'

वृद्धने ऋषिकी पूरी बात सुनी, इसमें भी सन्देह ही है। वह कुछ क्षण तो स्थिर निष्कम्प खड़ा रहा और फिर एकदम घूमकर भाग खड़ा हुआ। उसे आज यह भी भूल गया कि ऋषिको प्रणाम करके वह लौटा करता है।

'भगवान् आवेंगे अपने झोपड़ेमें। ऋषिने कहा है तो आवेंगे ही।' वृद्धको लगता है कि कहीं श्रीकृष्ण उसके पहुँचनेसे पहले झोपड़ेमें पहुँच न गये हों। उसके पैरोंमें प्राण आ बसे हैं। उसे मार्ग-अमार्ग आज दीखता नहीं है।

'अपने झोपड़ेमें भगवान् आवेंगे !' पता नहीं कितने काम करने हैं। ग्राम-ग्रामके आस-पासकी भूमि, झोपड़ा ही स्वच्छ करना नहीं है। यह वनमार्ग क्या उनके आने योग्य है। अब वृद्धसे कौन कहे कि श्रीकृष्णको पैदल नहीं आना है।

मार्ग स्वच्छ करना है, समतल करना है और पता नहीं कहाँतक करना है। मार्गमें कोई पत्ता, टहनी, कङ्कड़ी न रहे—वनके मार्गमें यह श्रम कितने समय टिक पाता है। बीचमें स्मरण आता है—'झोपड़ेमें पुष्प, कन्द, फल तो बासी हो गये।' वृद्ध दूसरी ओर दौड़ता हैं।

इन दिनों बूढ़ा ऐसा अद्भुत बन गया है कि सोचा तक नहीं जा सकता। पूरे वनके निवासी जिसे अपना सरदार मानते हैं, जिसकी हुंकारसे इस बुढ़ापेमें भी काँपते हैं, वह और तो और, अपनी स्त्रीके सामने भी पृथ्वीपर मस्तक धर देने लगा है। कोई कुछ कहे, कोई प्रतिवाद करना चाहे, कोई उसके आदेशमें अपनी असुविधा बताने लगे, उसे आजकल एक बात आती है—पृथ्वीपर सिर धरकर गिड़गिड़ायेगा—'भगवान् आते होंगे इस झोपड़ेमें। तुम मुझपर दया करो।'

सब है, सारी व्यस्तता है—इतनी व्यस्तता कि उसकी पत्नी और पुत्रोंको लगता है कि वह पागल हो गया है। उसे भोजन करानेमें भी प्रयास करना पड़ता है। किंतु महर्षि शाकल्यको वह लकड़ियाँ, कन्द, फल अब भी पहुंचा आता है और स्थान स्वच्छ कर आता है; किंतु

अब उसे शीघ्रता रहती है और यह शीघ्रता तो उसे सभी कार्योंमें रहती है।

× × ×

'धनञ्जय ! आज एक साधकके दर्शन करने चलना है।' श्यामसुन्दरने रथ चलते ही आखेटके सहचारियोंको निषेध कर दिया कि वे अनुगमन न करें। शिविरमें भी वे चलते-चलते कह आये हैं कि आज मध्याह्नमें उनकी प्रतीक्षा न की जाय।'

'ऐसा साधक इधर कौन है, जिसके दर्शन करनेको स्वयं द्वारिकाधीश उत्सुक हैं ?' अर्जुनको आश्चर्य होना स्वाभाविक है। पाण्डव इतने प्रमादी नहीं हैं कि आस-पासके काननमें रहनेवाले तपस्वियोंकी वे खोज-खबर न रक्खें। 'महर्षि शाकल्यकी गुहापर चल रहे हैं आज आप ?'

अर्जुनके आश्चर्यका कारण है। महर्षि शाकल्य तपस्वी हैं, योगी हैं ; किंतु हैं भगवान् वेदव्यासके प्रशिष्य और जब व्यासजी ही श्रीकृष्णके दर्शन करने इन्द्रप्रस्थ आते हैं, महर्षि शाकल्यको श्यामसुन्दर सन्देश भेज देते तो वे अपना अहोभाग्य मानते।

'मानवके समीप आध्यात्मिक साधनके तीन उपकरण हैं—मस्तिष्क, हृदय और देह।' चलते रथमें माधव अपने सखाको समझा रहे थे—'मस्तिष्कके जो साधक हैं—प्रतिभाका प्रसाद जिन्हें मिला है, उन महर्षियोंके दर्शन हम दोनों इन्द्रप्रस्थमें कर लेते हैं। इन ज्ञानमूर्तियोंकी उपस्थिति धराको धन्य करती है।'

'हृदयका धन जिनके पास है, भक्तिदेवीके जो अनुग्रह-भाजन हैं ; नन्दनन्दनको उनके द्वारतक दौड़ना पड़ता है।' अर्जुनने हँसकर अपने नित्य सखाकी ओर देखते हुए कहा।

'सो तो है ही। इसीलिए द्वारिकासे बार-बार दौड़कर वह इन्द्रप्रस्थ आता है।' श्रीकृष्ण भी हँसे—'लेकिन आज एक देहके साधकके द्वारपर हम चल रहे हैं। उसके पास न बुद्धि है और न भावुकताकी शास्त्रीय बातें ; किंतु देहको उसने लगा दिया है और तुम जानते हो कि देह सत्ता है। सत्ताका ठीक संयम होगा तो चित् और आनन्द उससे भिन्न नहीं रहेंगे।'

'सच्चिदानन्द स्वयं दौड़ा जा रहा है, यह तो देख रहा हूँ ; किंतु वे महाभाग ?' अर्जुनने पूछा !

'हम उस किरात-पल्ली चल रहे हैं।' रथके अकल्पित वेगने अबतक गन्तव्यतक पहुँचा दिया था उन्हें और पार्थ-को एक अद्भुत दृश्य देखनेको मिला। सम्पूर्ण वन-निवासी जैसे मूर्ति बने खड़े रह गये थे। श्रीकृष्ण स्वयं आतिथेय बन गये एक झोपड़ेमें जाकर ; क्योंकि उसका स्वामी वृद्ध तो अपने-आपको भी भूल ही गया था।

'बाबा, महर्षि शाकल्यको कह, हम उनके आश्रमके सम्मुखसे जायँगे।' वृद्धने भले महर्षिको वरदान न दिया हो, उससे जो माँगा गया, श्याम उस माँगको अपूर्ण रहने कैसे दे सकता था। वृद्धके श्रवणमें स्वरोंने चेतना दी और वह सन्देश देने दौड़ा—वह दैहिक साधक, उसे भला क्या चाहिये था। उसे देनेको त्रिभुवननाथके पास था भी क्या ?

पूजा

'सब प्रजाजन उपस्थित हो गये ?'

'श्रीमान्‌की आज्ञा तथा जगत्पतिके दर्शनके सौभाग्यको कौन अतिक्रमण कर सकता है महाराज ? किंतु···।'

'किंतु—किंतु परन्तु क्या मन्त्रीप्रवर ? यह किंतु क्या ?' आनर्त महाराज कुछ चञ्चल एवं उद्विग्न हो उठे। 'क्या मेरे किसी पूर्वपाप अथवा दुर्भाग्यसे भगवान् इधरसे नहीं पधारेंगे ? उन्होंने मार्ग बदल दिया है ? आह ! मैं इतना अधम हूँ कि उनके श्रीचरणोंमें दो पुष्प भी नहीं चढ़ा पाऊँगा !'

'आप व्यर्थ आकुल होते हैं। भगवान् इधरसे ही पधार रहे हैं।' हाथ जोड़कर वृद्ध मन्त्रीने कहा। 'दूतोंने समाचार दिया है कि प्रभुकी मध्याह्नसन्ध्या अपनी ही सीमामें होगी।'

'तब किंतु क्या ?' आश्वस्त होकर महाराजने पूछा।

'महाराज ! मेरा कुछ और ही अर्थ था। वह सोमपीड़ बढ़ई···।'

'ओह, वह श्रद्धामय वृद्ध ।' महाराजने मन्त्रीको बीचमें ही रोका ।

'वह सबसे प्रथम प्रभुके श्रीचरणोंमें अपना उपहार रखना चाहता है । उसे ऐसा कर लेने दो ! उन चरणोंमें राजा और भिक्षुकका भेद नहीं । वहाँ केवल प्रेम ही पुरस्कृत होता है और हमें यह स्वीकार कर ही लेना चाहिये कि वह वृद्ध इस मार्गमें हम सबका नरेश है । उसे सम्मानपूर्वक सबसे पहले पूजन करने दो ।'

'पर वह आये भी तो श्रीमान् ।' मन्त्रीने नम्रतासे कहा ।

'वह नहीं आया ?' महाराज जैसे आकाशसे गिरे ।

'जी ! वह नहीं आया और आना चाहता भी नहीं ।' मन्त्रीने बहुत ही नम्रतासे उत्तर दिया । 'मेरे विश्वस्त जनोंने मुझे सूचित किया है ।'

'ऐसा हो नहीं सकता ।' महाराजके स्वरमें विचित्र आश्चर्य था । 'मन्त्रीवर ! तुम जानते हो उस वृद्धको ! भगवान्के हस्तिनापुर जानेका समाचार पाकर ही वह प्रेमोन्मत्त हो गया था । उसी दिनसे उसने मार्गके तोरण-द्वार बनाने प्रारम्भ कर दिये थे । कल मध्यरात्रितक वह सिंहासन सजानेमें लगा था । मेरा तो पूर्ण विश्वास है कि उसीके प्रेमके कारण प्रभुने इधरसे द्वारिका जाना निश्चित किया है ।'

'श्रीमान् उचित ही कहते हैं ।' मन्त्रीने कहा । 'उसने कुछ भी पारिश्रमिक हमलोगोंके बार-बार आग्रह करनेपर

भी ग्रहण नहीं किया है। साथ ही वह इतना श्रम न करता तो यह तोरणद्वार इतना सुन्दर बन भी न पाता।'

'तब वह प्रभुके ठीक आगमनके समय उपस्थित न हो, यह कैसे हो सकता है?' महाराजका गला भर आया था। 'तुम स्वयं जाकर ले आओ उसे।'

'जो आज्ञा।' राजकीय रथ लेकर प्रधान मन्त्री उस बढ़ईको लेने चल पड़े।

(२)

एक फूसकी झोपड़ी है। फूसकी दीवार और फूसके छप्पर। गोबरसे लिपी-पुती स्वच्छ। एक कोनेमें बढ़ईके औजार समेटकर रक्खे हैं। एक ओर पुआल पड़ा है और एक केलेके पत्तेपर पुष्पोंकी वनमाला, चावल, चन्दन सजा रक्खा है। तांबेके लोटेमें सम्भवतः जल होगा।

पूजाका सब उपहार तो सजा है; पर पुजारी सावधान हो तब न? मन्त्रीने रथ उसी झोपड़ीके द्वारपर रोक दिया। उन्होंने देखा—बूढ़ा हाथमें तुलसीकी माला लिए सामनेके तुलसी चबूतरेपर लगी श्रीतुलसीजीको ध्यानसे देख रहा है। हाथमें माला स्थिर पड़ी है और नेत्रोंसे अविरल अश्रुप्रवाह चल रहा है।

'आपको महाराज स्मरण कर रहे हैं।' मन्त्रीके वचनोंसे उसकी तन्मयता भङ्ग हुई। सकपकाकर उसने दोनों हाथ जोड़ लिए और इस प्रकार मन्त्रीके मुखकी ओर देखने लगा मानो कुछ सुना ही नहीं।

'श्रीद्वारिकाधीशके दर्शनोंके लिए आपको ले चलने मैं रथ लेकर आया हूँ। प्रभु पहुँचनेहीवाले हैं!' मन्त्रीने आग्रह किया।

'आपने व्यर्थ कष्ट किया।' वृद्धकी अञ्जलि बँधी थी और उसके स्वरमें अत्यधिक नम्रता थी। 'हम इस प्रकार महाराजाओंकी भाँति प्रभुके दर्शन नहीं करते।'

'तब किस प्रकार आप दर्शन करेंगे?' मन्त्री आश्चर्य-चकित था।

'जब वे मेरे द्वारपर आवेंगे'—वृद्धने सरलतासे कहा। इस बूढ़ेके गर्वपर मन्त्री हँसीको रोक न सके। 'जो राज-सूयमें प्रथम पूज्य माने गये, जो महाराजके आग्रहपर भी राजसदनमें आनेकी प्रार्थनाको अस्वीकृत कर चुके है, जिनके दर्शनके निमित्त स्वयं महाराज सीमातक दौड़े गये हैं, वे इस झोपड़ीके द्वारपर जायेंगे?' मन्त्रीको इस गर्वसे अरुचि हुई। उन्होंने पीठ फेर ली। पता नहीं उन्होंने सुना भी या नहीं। वृद्धने कहा—'दीनोंके द्वारपर दीनबन्धुको छोड़कर और कौन आवेगा?'

रथ जैसे आया था, वैसे ही लौट गया।

गरुड़ध्वज दृष्टि पड़ा। कोलाहल मच गया। सब लोग दौड़े। स्वयं महाराज पैदल पूजाका थाल लिए आगे-आगे बालकोंकी भाँति दौड़ रहे थे। 'यह क्या? रथ तो दूसरी ओर मुड़ पड़ा! भगवान् उधर कहाँ जा रहे हैं?' लोग आश्चर्यपूर्वक उधर ही चलने लगे!

'रोको दारुक !' प्रभुने सारथिको आज्ञा दी और वह चारों कर्पूरगौर अश्व वहीं स्थिर हो गये।

वृद्ध बढ़ई कुछ समझ सके, तबतक तो रथमेंसे कूदकर मयूरमुकुटधारी एक नीलोज्ज्वल ज्योति उसके सम्मुख खड़ी हो गयी। एक बार मुख ऊपर उठाकर देखा। खड़े होनेका भी तो अवकाश नहीं मिला था। वैसे ही मस्तक उन कमलाकरलालित चरणोंपर लुढ़क गया !

महाराज, मन्त्री, सामन्त, सेनापति प्रभृति सभी धीरे-धीरे पहुँच गये। सब आश्चर्यसे एवं सङ्कोचसे प्रभुके रथके पास ही खड़े थे। दीनबन्धु दीनके द्वारपर खड़े थे और दीन उनके श्रीचरणोंपर पड़ा था। पूजाकी सामग्री केलेके पत्तेपर धरी ही रही। उसे छूनेका अवकाश एवं स्मृति किसे ?

बहुत देर हो गयी। न तो प्रभु हिले और न वृद्ध ! बड़े सङ्कोचसे हाथ जोड़कर दारुकने कहा, 'महाभाग ! प्रभु कबसे खड़े हैं। पूजा तो कर लो !'

'दारुक ! पूजा तो हो गयी।' उन कमलनेत्रोंसे दो विन्दु उस वृद्धके मस्तकपर पड़े ! जीव-ब्रह्मकी एकतासे बड़ी पूजा क्या है ? वह पूजा तो सचमुच ही हो गयी थी। श्रीचरणोंपर वृद्धका शरीर ही पड़ा था। वह तो श्यामसुन्दरसे एक हो चुका था !

भक्तवत्सल

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेण वा।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः ॥

सूर्य-ग्रहणके महापर्वपर कुरुक्षेत्रमें अपार मानव-समुदाय एकत्र हुआ था। अधिकांश ऋषिगण तथा राजाओंके समुदाय आये थे। महान् स्नानके पुण्यको प्राप्त करनेका सुअवसर तो था ही, श्रीकृष्णचन्द्रके सामीप्यका सुरदुर्लभ लाभ सबसे बड़ा आकर्षण था। द्वारिकामें ऋषि जा सकते थे; किंतु वहाँ राजसदनमें उन अरण्यवासियों-को वह उल्लास कैसे प्राप्त हो सकता था जो इस विस्तीर्ण तीर्थभूमिमें सहज सुलभ था। नरपति कोई भी कुशस्थली जाय, उसे यादवाधीशका अतिथि ही होकर तो रहना होता। यहाँ राजाओंके अपने शिविर हैं। साथ ही श्रीकृष्ण-दर्शनका महान् सुयोग। महाराज उग्रसेन अपने पूरे परिकरके साथ पधारे हैं। यादवोंकी सभामें विराज-मान मधुसूदनकी जो परमैश्वर्यमण्डित दिव्य मूर्ति है, उसके पादाभिवन्दनका सौभाग्य यहाँ सहज सुलभ है।

इस महोत्सवके मञ्जु उल्लासमें वसुदेवजीने महायज्ञ किया। कोई आगत ऋषि-मुनि ऐसा नहीं था जो उस

यज्ञमें ऋत्विक् बननेको स्वयं आगे न आया हो। यज्ञ और दानकी महिमा, कुरुक्षेत्रकी इस भूमिमें, समन्त-पञ्चक क्षेत्रमें अल्पदानका भी अतिशय माहात्म्य बार-बार श्रवणोंमें पड़ा और सत्यभामाजीके चित्तमें एक लालसा जागी। उन्होंने एक दिन अपने आवासमें पधारे देवर्षिसे पूछा—'देव ! दानमें जो कुछ दिया जाता है, वह वस्तु अक्षय होकर उपलब्ध होती है, यह सत्य है ?'

'हाँ देवि ! यदि दातामें शुद्ध श्रद्धा हो, दान पुण्य-स्थलपर, शुभ समयमें और सत्पात्रको दिया जाय।' देवर्षिने किञ्चित् आश्चर्यसे पूछा—'किंतु श्रीहरिकी वल्लभाको ऐसा क्या अप्राप्य है, जिसकी वे कामना करें। उनकी उपलब्धिको तो काल स्पर्श नहीं करता।'

'मैं कुछ दान करना चाहूँ, आप स्वीकार करेंगे ?' सत्यभामाजीने देवर्षिके प्रश्नका उत्तर नहीं दिया। उनमें शुद्ध श्रद्धा नहीं है, यह आशङ्का कोई कलुष-हृदय भी नहीं कर सकता। यह भगवान् परशुरामकी पुण्य यज्ञ-स्थली धर्मक्षेत्र—इस-जैसा पुण्यस्थल उपलब्ध है और दानका महापर्व काल है। सम्मुख खड़े महाभागवत, नित्य-विरक्त देवर्षि नारद यदि दान ग्रहण करना स्वीकार कर लें तो श्रेष्ठतम सत्पात्रकी समस्या भी सुलझ गयी।

'नारद निवासहीन पर्यटक है और नित्य निष्परिग्रही' देवर्षिने फिर भी कहा—'देवि ! ऐसा कोई भाग्यहीन नहीं जो आपके करोंसे प्राप्त प्रतिग्रहको अपने शत-शत जन्मोंके पुण्यपुञ्जका उदय न माने।'

'तब आप कल प्रभातमें दर्शन देनेका अनुग्रह करें।' सत्यभामाजीने अञ्जलि बाँधकर, मस्तक झुकाकर बड़ी श्रद्धासे नमन किया।

× × ×

'आप मुझसे सचमुच प्रेम करते हैं?' प्रातःकृत्य, सन्ध्या-हवन, गो-विप्रार्चन, दान तथा सेवकोंका उचित सत्कार समाप्त करके श्यामसुन्दर आसनपर विराजे तो श्रीरुक्मिणीजीके अनन्तर सत्यभामाजीने आकर उनके चरणोंपर मस्तक रक्खा और उनका अर्चन करते-करते ही उन्होंने मन्दस्मितके साथ पूछ लिया।

'यह भी कोई पूछनेकी बात है। मैं तो तुम्हारा ही हूँ।' श्रीकृष्णने सप्रेम स्मितपूर्वक देखा। 'कहीं यह मानिनी आज मान तो नहीं करनेवाली है?'

'आप तो इस प्रकार सभीसे कहते हैं।' सत्यभामाजी-में मान नहीं, उच्छलित राग था। 'मेरा तो यह मेरे करका रत्नकङ्कण है। जिसे चाहूँ, उसे दे दूं।'

'यह जन भी तुम्हारा इसी प्रकारका रत्नाभरण है। इसे भी जिसे चाहो दे सकती हो।'—माधवका कमलमुख सहज हास्य-भूषित हुआ।

'सच?' सत्यभामाने अद्भुत भङ्गिमासे देखा। 'आपका कुछ विश्वास नहीं।'

'देवि! यह तीर्थभूमि है और मैं आजकल नियम-पालन कर रहा हूँ, यह आप जानती हैं।' श्रीकृष्णचन्द्र सुप्रसन्न थे।

'नारायण ! गोविन्द !' देवर्षिकी वीणाकी झङ्कार आयी। इतनेमें वे दिव्य दम्पति उनके स्वागतमें उठ खड़े हुए। सत्यभामाजीने स्वयं स्वर्णपीठपर सुकोमल आस्तरण बिछाया। द्वारिकानाथने देवर्षिका जबतक पूजन किया, सत्यभामा स्वर्णपात्रमें जल, कुश ले आयीं।

'**अहं श्रीकृष्णपत्नी सत्यभामा ब्रह्मपुत्राय नारदाय त्वामिमं पतिं प्रददे।**' सविधि सम्पूर्ण देश-कालादि उच्चारणपूर्वक हाथमें जल-कुश लेकर सत्यभामाजीने सङ्कल्पका उच्चारण किया और देवर्षिने दक्षिण हस्त बढ़ाकर वह कुशाक्षत ग्रहण कर लिया। प्रातःवन्दनके लिए उपस्थित सभी राजमहिषियोंने आश्चर्यसे एक दूसरेका मुख देखा।

'श्याम ! नारद परिव्राजक हैं। अब उठो और मेरे साथ चलो।' देवर्षिने वीणा उठायी। श्रीकृष्णचन्द्र चुपचाप उठ खड़े हुए।

'भगवन् ! आप इनका उचित मूल्य ले लें।' सत्यभामाजीने अब करबद्ध प्रार्थना की।

'देवि ! नारद परिग्रही नहीं है। कोई भी वस्तु लेकर मैं क्या करूँगा ? प्रतिग्रहमें प्राप्त वस्तुका विक्रय प्रतिग्रहीताकी इच्छापर निर्भर है और मैं श्रीकृष्णका विक्रय नहीं करूँगा।' देवर्षिने खुलकर हँसते हुए कहा। 'देवीने ठीक सोचा था कि इस पावनस्थलीमें इन चिरचञ्चलका दान करके आप इन्हें अक्षयरूपसे प्राप्त कर लेंगी ; किंतु यह तो ऐसा धन नहीं है कि इसका लोभ नारदके मनमें न हो। श्रीकृष्ण ! आओ, चलें।'

सत्यभामाजी मूर्छित नहीं हो गयीं, यही बहुत बड़ी बात हुई। एकत्रित राजरानियोंका मुख निष्प्रभ हो गया। जिसे जो सूझा, उसने वही प्रारम्भ किया। देवर्षिके चरण पकड़े अनेकोंने। रुदन, क्रन्दन तथा भाग-दौड़ प्रारम्भ हुई। महाराज उग्रसेन, वसुदेवजी, माता देवकी तथा समस्त यदुवंश क्षणोंमें वहाँ एकत्र हो गया।

'श्रीकृष्णका विक्रय मैं नहीं करूँगा।' देवर्षि अनुचित हठ कर रहे हैं, यह भी कोई कैसे कह दे। अपने आराध्य-को वेचनेकी बात तो किसी सामान्य साधकके मनमें भी नहीं आती।

'दया करें प्रभु!' महारानी रुक्मिणी अन्तमें आगे आयीं।

'दया तो आप कर रही हैं करुणामयी।' देवर्षि सहसा गम्भीर हो गये। 'आप कह सकती हैं कि यह दान अवैध है। श्रीकृष्णपर आपका स्वत्व सर्वाधिक है; किंतु आपको यह विवाद नारदसे तो नहीं करना है। अच्छा, आप चाहती हैं तो मैं इन निखिल ब्रह्माण्डनायकका उचित मूल्य लेनेको प्रस्तुत हूँ।'

मैं दूँगी मूल्य। आप जो माँगना चाहें, ले लें।' सत्यभामा सोल्लास आगे आ गयीं।

'निखिल ब्रह्माण्डनायक' रुक्मिणीजीके अधरोष्ठ काँपे। वे मुख झुकाकर पीछे हट गयीं। वे जानती हैं कि उनके आराध्य भावैकगम्य हैं। जो उन्हें जैसा मानता-जानता है, उनके लिए वे वैसे ही होते हैं। अब इस समय देवर्षि

उन्हें निखिल ब्रह्माण्डनायक देखना चाहते हैं—तब उन अनन्तकोटि ब्रह्माण्डाधीशका मूल्य कहाँसे आयेगा ? सत्यभामाके उल्लासमें उन्हें केवल बाल-चापल्य दीखा।

'उचित मूल्य देवि !' नारदजी किञ्चित् व्यङ्गके ढङ्गसे हँसे। 'इन्हें तुलामें बैठा दीजिये।' नारदके लिए तो रत्न, स्वर्ण तथा शिलाएँ समान हैं। आप दूसरी ओर ताम्र, लौह, पाषाण भी रक्खें तो मुझे आपत्ति नहीं है। श्रीकृष्ण तुल जायँ, बस इतना मुझे चाहिए।'

विशाल तुलास्तम्भ तत्काल स्थापित हो गया। यदुकुलशिरोमणिकी पट्टमहिषी अपने प्राणधनको रत्नोंसे तौल देनेके उत्साहमें थीं ; किंतु रत्न, स्वर्णराशि, रजत भी जब पर्याप्त नहीं हुआ, ताम्र तक पर यदुवंशी उतर आये। अन्ततः उन्हें श्रीकृष्णको खोना तो था नहीं।

'ये भावमय हैं। आप दूसरी तुलापर सङ्कल्पित धनका कोई प्रतीक भी धरेंगे तो वह अपना सम्पूर्ण भार देगा।' देवर्षिने समझाया।

रानियाँ निराभरण हो चुकी थीं। किसी यादवके शिविरमें तथा शरीरपर एक आभूषण नहीं बचा था। पाण्डवशिविर ही नहीं, दूसरे मित्र राजाओंके शिविर भी उस तुलापर रिक्त हो चुके थे। इतनेपर भी श्रीकृष्ण जिस पलड़ेपर थे, वह भूमिपर स्थिर धरा था।

'सम्पूर्ण राज्य एवं राजकीय कोष।' एक साथ महाराज उग्रसेन तथा चक्रवर्ती सम्राट् युधिष्ठिरने अपने मुकुट तुलापर धर दिये। तुला किञ्चित् भी तो हिली

होती ! उसमें तो क्षुद्रतम कम्पन भी नहीं हो रहा था। केवल स्थिर खड़े थे एक ओर पितामह भीष्म और दूसरी ओर पाण्डव-सम्राज्ञी द्रौपदी। दोनोंके नेत्र झर रहे थे। दोनोंके कण्ठोंसे प्रायः गद्गद स्वर साथ ही फूटे—'भक्त-वत्सल !'

× × ×

'वत्से !' माता देवकीने रुक्मिणीजीकी ओर देखा।

'मातः ! मैं उनकी चरण-चर्चिका हूँ।' उन श्रीस्वरूपा-ने मस्तक झुका लिया। 'मैं अपने सम्पूर्ण वैभवके साथ स्वयं भी तुलापर बैठ जाऊँ—निखिल ब्रह्माण्डका वैभव अपने नायककी समता तो नहीं कर सकेगा।'

'तुम ?' माताने श्रीहलधरकी ओर देखा।

'यह ठीक कि श्रीकृष्ण मेरे अनुज हैं।' श्रीसङ्कर्षणने माताको कोई आशा नहीं दी। 'लेकिन इस समय तुलामें उनका समत्व करने-जैसा साहस मैं अपनेमें नहीं पाता हूँ।'

'बेटी ! ऐसे अवसरपर सम्मान रखना चाहोगी तो काम चलेगा नहीं।' माता रोहिणीने सत्यभामाके कंधेपर हाथ रक्खा। 'व्रजराजके शिविरमें जाओ। श्याम प्रेमके मूल्यमें बिकता है और वहाँ प्रत्येक इसका धनी है। किसीको भी ले आओ वहाँसे।'

आश्चर्यकी बात नहीं थी कि व्रजके शिविरसे कोई अबतक वहाँ आया नहीं था। श्रीकृष्णको सहन नहीं था कि व्रजके जन द्वारिकाके शिविरमें आकर किसीकी भी

उपेक्षा देखें। उन्होंने बाबासे आग्रह कर रक्खा था—'द्वारिकाके जिस किसीको श्रीचरणोंका दर्शन करना हो, उसे यहाँ आना चाहिए। केवल बिशेषरूपसे आमन्त्रित होनेपर ही यहाँका कोई भी उस शिविरमें जायगा।'

व्रजके लोग तो कन्हाईके संकेतपर प्राण देनेवाले। उन्होंने देखना भी नहीं चाहा कि द्वारिकाके शिविरका स्वरूप कैसा है। सत्यभामाजी तो इस समय विह्वल हो रही थीं। वे रथमें बैठीं और रथ जब व्रजराजके शिविरके सम्मुख रुका, उन्होंने यह भी नहीं देखा कि उन श्रीकृष्ण-पट्टमहिषीको कौन, कैसे देख रहा है। रथसे उतरकर दौड़ीं वे और सीधे श्रीवृषभानुजीके शिविरमें कीर्तिकुमारी-के चरणोंमें सिर रख दिया उन्होंने—'बहिन ! शीघ्र चलो। इस विपत्तिसे मुझे बचा लो।'

'चलो महारानी!' श्रीवृषभानुनन्दिनीको बड़ा सङ्कोच हुआ। बड़ी त्वरासे उन्होंने सत्यभामाजीको उठाकर अङ्कमाल दी। यह भी नहीं पूछा कि विपत्ति क्या है और कहाँ चलना है उन्हें। जैसे बैठी थीं, वैसे ही वे उठ खड़ी हुईं। उनकी दो सखियोंने स्वत: उनका अनुगमन किया ; क्योंकि उन्होंने तो किसीको कोई संकेत तक नहीं किया। रथपर ही उन्होंने सुना कि विपत्तिका रूप कैसा है।

'वत्से !' माता रोहिणीने दौड़कर अङ्कमें ले लिया था रथसे उतरते ही। 'तू ही आ गयी ?'

संकेतसे ही उन श्रीरासेश्वरीने सत्यभामाजीको सूचित कर दिया कि तुलाके दूसरे पलड़ेपर जो कुछ भी अबतक

रक्खा गया है, उसे उठा लिया जाना चाहिए। वे माता देवकीकी पद-वन्दना करने बढ़ीं तो तुला रिक्त होने लगी। वहाँ उस सामग्रीका रखना व्यर्थ तो सिद्ध ही हो चुका था।

अपने कण्ठमें पड़ी वनमालासे एक तुलसीदल निकाला उन्होंने। नमित-मुख बढ़ीं वे और वह दल कितने स्नेह, कितने सुकोमल ढङ्गसे तुलापर उन्होंने धरा– कोई अतिशय श्रद्धालु अपने आराध्यपर भी कदाचित् ही ऐसे दलार्पण कर पाता हो। तुलसीदल तुलापर चढ़ा और तुलाका दूसरा पलड़ा उठ गया। तुला संतुलित—सर्वथा संतुलित हो गयी।

क्षणार्ध लगा इसमें। देवर्षि ऐसे आतुर होकर बढ़े, मानो कोई अन्य उस दलको उठा लेगा—ऐसा भय हो उन्हें। उस दलको उठाकर उन्होंने अपनी जटाओंमें छिपा लिया। रोम-रोम पुलकित, स्वेद-स्नात स्वर्णाङ्ग, अजस्र-स्रवित लोचन, वे उद्दाम नृत्य करने लगे थे; किंतु गद्‌गद स्वरसे वाणी फूट नहीं रही थी।

'आपको एक गोपकन्याने वञ्चित किया ; किंतु मैं ऐसा नहीं होने दूंगी।' देवर्षि कुछ स्वस्थ हुए तो बड़े सम्मान, बड़े स्नेहसे प्रेमहास्यपूर्वक श्रीराधाकी ओर देखती हुई सत्यभामाजीने नारदजीसे कहा। 'आप जो रत्नादि लेना चाहें···।'

'किसने वञ्चित किया देवि ? किसको वञ्चित किया ?' देवर्षि बीचमें ही बोल उठे। जटामेंसे वह दल

उन्होंने एक बार निकालकर देखा और फिर जटामें रखते हुए कहने लगे—'इन कृपामयीके द्वारा कभी कोई वञ्चित हो सकता है? इनके श्रीचरणोंकी छायासे मायाकी छलता दूर भागती है। यह तुलसी—वृन्दा, यह तो स्वयं इनका स्वरूप है और ये श्रीकृष्णसे नित्य अभिन्नरूपा—नारदको श्रीकृष्ण मिले थे। चिरचञ्चल वे, उनकी स्थिरताका आश्वासन तो इन्होंने दिया। अब नारदको राधा-कृष्ण दोनों मिले और अब वे चपल चले तो जायँ!'

देवर्षि नारद फिर प्रेमविभोर होकर उन्मद नृत्य करने लगे थे।

(हरिवंश तथा पद्मपुराणकी एक कथाके आधारपर)

कर्तव्यनिष्ठा

'हरिहर !'

'गुरुदेव !'

'क्षत्रिय उसे कहते हैं जो आर्तजनोंकी रक्षा करे !'

'हम क्या कर सकते हैं ?'

'मन्दिर ध्वस्त हो रहे हैं। कुलवधुएँ नित्य अपमानित हो रही हैं और क्षत्रिय अपने प्राण बचानेमें ही अपना पराक्रम मान बैठे हैं।'

'आपकी आज्ञा होनेपर हम दोनों भाई कहीं भी मस्तक उत्सर्ग कर सकते हैं गुरुदेव !'

'इस बातको भूलना मत !'

'गुरुदेवका आदेश विस्मृत हो, इससे पहिले तो मृत्युका वरण श्रेयस्कर है।'

'तब आज ही विजय मुहूर्त है।' आकाशकी ओर बड़ी वेधक दृष्टिसे देखते हुए उन विद्याकी साक्षात् मूर्ति तपोधनने आदेश दिया—'यहीं पड़ेगी विजयनगरकी नीवँ।'

'विजयनगर ?'

'विजयनगर केवल नगर नहीं रहेगा। विजयनगर राज्यकी स्थापना करनी है तुम्हें।' त्रिकालदर्शीकी गम्भीरतासे आचार्य माधव आदेश दे रहे थे—'अपने खड्गको कोपसे बाहर करो और तुम स्वतन्त्र नरेश हो। बुक्का! विजयनगर-नरेश हरिहरको पहला अभिवादन तुम्हारा मिलेगा।'

कुछ नहीं था वहाँ। एक सपाट भूमि थी निर्जन। होयसल राज्यके सरदार दो सगे भाई हरिहर और बुक्का-को बिना कुछ बताये उनके गुरु—दक्षिण भारतके सर्वज्ञ माने जानेवाले तपोमूर्ति आचार्य माधव अपने साथ वहाँ ले आये थे।

'विजयनगर-नरेशकी जय!' भूमिमेंसे केवल रज उठाकर गुरुदेवने शिष्यके मस्तकपर तिलक कर दिया।

'विजयनगर-नरेशकी जय!' बुक्काने बड़े भाईके पैरोंके पास तलवार रखकर घुटनोंके बल बैठकर अभि-वादन किया।

'सेनापति! शस्त्र उठा लो। आचार्यने आज्ञा दी। उनकी आज्ञाका पालन हो रहा था; किंतु बच्चोंके खेल जैसा था यह आज्ञा-पालन। एक निर्जन स्थानपर तीन व्यक्ति इस प्रकारका नाटच कर लें, इसका क्या अर्थ हो सकता है। लेकिन शिष्योंको अपने गुरुमें अगाध श्रद्धा थी। शिष्योंकी बात तो दूर—दक्षिणके यवन शासक भी इसका समाचार पा लेते तो उनको रात्रिमें निद्रा नहीं

आती। आचार्य माधव जो कहते हैं, वह होता है—यह सन्देह कैसा ? वह तो हो चुका माना जाता है दक्षिण भारतमें।

'राजन्!' आचार्यने गौरवभरे स्वरमें कहा—'मैं वर्षोंसे इस मुहूर्तकी प्रतीक्षा कर रहा था और इस भूमि-की शोधमें था।'

'गुरुदेवकी कृपा महान् है।' हरिहरने मस्तक झुका लिया।

'लेकिन राज्यकी प्रतिष्ठा राज्यके लिए नहीं है। तुम अपनी बात स्मरण रखना।' गुरुदेवने गम्भीर स्वरमें चेतावनी दी—'विजयनगर तभीतक रहेगा, जबतक वह उत्पीड़ितोंको आश्रय देता रहेगा। धर्मकी रक्षाके लिए मस्तक देनेको उसका शासक समुद्यत रहेगा। वह स्वयं आततायी एवं उत्पीडक न बन जायगा।'

'आततायी क्रूर विधर्मी अत्यन्त प्रबल हो रहे हैं।' हरिहरके भालपर चिन्ताकी रेखाएँ आयीं।

'तुम्हें मस्तक देना है धर्म एवं उत्पीड़ितोंकी रक्षाके लिए।' गुरुदेव कहते गये—गौओंकी, ब्राह्मणोंकी, मंदिरों-की और सतियोंकी मर्यादा-रक्षाके लिए तुम्हें मस्तक देनेको उद्यत रहना है। मनुष्य उद्योग कर सकता है और तुम्हें उद्योगमें प्रमाद नहीं करना है।'

हरिहरने मस्तक झुकाया। आचार्य माधवने बुक्काकी ओर मुख किया—'सेनापति!'

'अपने नरेशके लिए और अपने गुरुदेवके लिए मेरा मस्तक सदा प्रस्तुत है।' बुक्काने भी सिर झुका दिया।

'अपने नरेशको तुम्हें नरेश बनाना है।' आचार्यने आज्ञा दी—'मत देखो कि तुम्हारे सैनिक संख्यामें कितने कम हैं। माधवका आशीर्वाद ही नहीं, स्वयं माधव तुम्हारे साथ रहेगा।'

कहनेको बहुत कुछ नहीं रह जाता। दक्षिणके यवन शासकोंने कल्पनातक नहीं की थी कि होयसल राज्यके दो सरदारोंकी गिनी-चुनी सैनिक टुकड़ी कोई आक्रमण कर सकती है; किंतु बुक्काके वे मुट्ठीभर सैनिक जिधर निकले, विजयश्री मानो उन्हें वरण करनेको पहले प्रस्तुत थी। शत्रुके सैनिकोंकी कई गुनी संख्या भागती दीखने लगी और अन्तमें कृष्णासे कावेरीके मध्यका प्रदेश विजयनगर नरेशके सिंहासनकी अभय छाया पाकर आततायियोंके अत्याचारसे सुरक्षित हो गया।

'धर्मकी रक्षा! देवमन्दिरोंकी रक्षा! कुलनारियोंके सतीत्वकी रक्षा! आर्त प्रजाकी रक्षा!' विजयनगर राज्यकी प्रतिष्ठा राज्यके लिए हुई होती तो बात समाप्त हो गयी थी; लेकिन आचार्य माधवकी चतुःसूत्री विजयनगरका प्रेरणा-मन्त्र था। 'मस्तक देना है। मस्तक देनेको उद्यत रहना है!' वहाँ तो कर्तव्य पुकार रहा था अहर्निशि।

× × ×

(२)

'गुरुदेव !'

'मेरा कर्तव्य मुझे पुकार रहा है राजन् !

'विजयनगरने क्या अपराध किया है ? आचार्यके एकान्त एवं त्यागमें कब बाधा दी है इस सेवकने ? हम सब किसके चरणोंमें प्रणिपात करके प्रेरणा प्राप्त करेंगे ?'

'एकमात्र जगदीश्वर ही प्रणम्य एवं शरण्य हैं राजन् !' आचार्य माधव जब कोई निश्चय कर लेते हैं—हिमालयके समान स्थिर होता है उनका निश्चय। उन्होंने संन्यास-ग्रहणका निश्चय कर लिया है। विजयनगरकी प्रजा -- हिंदू और यवन—सब अनाथकी भाँति रो रहे हैं। महाराज हरिहर हाथ जोड़े खड़े हैं। लेकिन जो त्रिलोकी-के वैभवके त्यागका सङ्कल्प कर चुका हो, उसे क्या मोह ?

'यहाँ गुरुदेवको क्या विघ्न होता है ?'

'ब्राह्मण यदि ब्राह्मण हो तो उसे कहीं कोई विघ्न नहीं होता।' आचार्य ही हैं जो इस क्रन्दन करती भीड़के मध्य भी मुसकरा सकते हैं। विजयनगरका वैभव जिसके आशीर्वादसे एकत्र हुआ और जिसके संकेतपर चलता है, वह राजगुरु, महामन्त्री, राज्यका सर्वेसर्वा—लेकिन वह कच्ची दीवारोंसे घिरी, तृणोंसे आच्छादित कुटीरमें गोबरसे लिपी वेदीपर कुशासन बिछाकर ग्रन्थोंके अम्बार-में निमग्न रहनेवाला तपस्वी—भला ऐसे त्यागमय तपो-मूर्ति ब्राह्मणके लिए कहीं कोई विघ्न हो कैसे सकता है ?

'हम सबका हो कोई अपराध ?'

'ब्राह्मण कृपा करना जानता है, अपराध देखना नहीं।' आचार्यने मस्तकपर अभय कर रक्खा—'त्याग ब्राह्मणका सहज स्वरूप है। मेरे-जैसा ब्राह्मण त्याग न करे तो समाज आदर्श किससे प्राप्त करेगा।'

'गुरुदेवने संग्रह तो कभी किया नहीं।'

'तुम जिसे संग्रह कहते हो, वह तो भोग है। ब्राह्मण-के लिए भोग तो सदा निषिद्ध हैं।' आचार्य आश्वासन दे रहे थे—'मेरा शरीर जीर्ण हो रहा है। इस झोंपड़ीका मोह मुझे छोड़ना चाहिए। मैं कहीं जाता तो हूँ नहीं। श्रृंगेरी तुमसे कितनी दूर है। मैंने अबतक तुम्हें सम्मति ही तो दी है। संन्यासी किसीको भी सत् सम्मति एवं धर्म-प्रेरणा देनेसे कब अस्वीकार करता है।'

'गुरुदेव !'

'कातर मत बनो !' आचार्य कहते गये—'मैंने अब-तक गृहस्थ ब्राह्मणोंके लिए शास्त्रका सङ्कलन किया है ; किंतु परम दान है ज्ञानका दान और जो अध्ययनशील होकर ज्ञानका दान नहीं करता, वह ज्ञानखल कहा जाता है।'

'श्रीचरणोंने अबतक ज्ञानदान ही किया है।' नरेशने चरण पकड़े—'वह ज्ञानयज्ञ अखण्ड चलता रहे, इस प्रकारकी प्रत्येक सेवा…।'

'ज्ञान सेवा-सम्पत्ति या सहायता नहीं चाहता ।' आचार्यने बीचमें ही रोक दिया । 'अबतक मैंने कर्मशास्त्र-के आवश्यक अङ्गोंका सङ्कलन किया है । ज्ञानशास्त्रका सङ्कलन एवं उपदेश वही कर सकता है जो जगत्के मिथ्यात्वका अनुभव करे । जब आचार वाणीसे विपरीत होता है, पुरुष मिथ्यावादी कहलाता है ।'

'हम सब···!' भावरुद्ध कण्ठ बोल नहीं सका ।

'मुझे मेरा कर्तव्य पुकार रहा है ।' आचार्यने आदेश-के स्वरमें कहा—'संन्यास-ग्रहणके निश्चयमें बाधा देना तब अपराध होता है, जब कोई अधिकारी न्यासका निश्चय कर चुका हो ।'

'आशीर्वाद !' बड़ी कातर याचना थी । किसीमें साहस नहीं था अधिक अनुरोध करनेका ।

'कर्तव्यका पालन स्वयं आशीर्वाद है !' आचार्यने निरपेक्षभावसे कहा । संन्यासका निश्चय करके अब जैसे वे संसारसे सर्वथा ऊपर उठ चुके थे—'सफलता होगी या नहीं, यह मत सोचो । शुभके लिए प्रयत्न सफल हो या असफल, वह कर्ताको तो पवित्र करता ही है ।'

इतिहास जानता है कि आचार्य माधव संन्यास लेकर स्वामी विद्यारण्य हुए और उन्होंने संसारको उससे अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थावली अपने इस आश्रममें भी दी, जितनी पूर्वाश्रममें दे आये थे । विजयनगरको उनकी प्रेरणा और आशीर्वाद सदा प्राप्त थे । वही आशीर्वाद—वही कर्तव्य-

निष्ठा विजयनगर सिंहासनपर प्रतिष्ठित रही—तब भी प्रतिष्ठित रही जब हरिहर द्वितीयने मैसूर, त्रिचनापल्ली और काञ्चीतक विजयनगरकी सीमा विस्तृत कर दी।

राजा आये और गये। देवराय द्वितीयकी प्रचण्ड वाहिनीने विवश किया पीगू (ब्रह्मा) और लङ्कानरेशको कि वे विजयनगरको वार्षिक कर दें। कृष्णदेवराय सिंहासनासीन हुए और कलिङ्ग (उड़ीसा) नरेशको बार-बार युद्धमें पराजित होकर अपनी कन्याका विवाह उनसे करना पड़ा।

ग्यारह लाख सैनिकोंकी विशाल वाहिनी, कन्याकुमारीसे बंगीय समुद्रतकका विशाल साम्राज्य; किंतु विजयनगरका विदेशियोंको चकाचौंधमें डाल देनेवाला वैभव क्या वैभवके लिए था?

'धर्मकी रक्षा! मन्दिरोंकी रक्षा! कुल-नारियोंके सतीत्वकी रक्षा! आर्त प्रजाकी रक्षा!' जाग्रत् मन्त्र था विजयनगरका और वहाँ सिंहासनपर राजदण्ड-ग्रहणके स्थानमें नवीन नरेश खड्ग लेकर दीक्षा ग्रहण करता था—'मस्तक देना है! मस्तक देनेको उद्यत रहना है!'

× × ×

(३)

'मैंने समझा था मैं बहिश्तमें आ गया हूँ।' उस दिन फारसका राजदूत अब्दुर्रज्जाक आया था विजयनगरमें।

नगरको देखकर वह ऐसा हक्का-बक्का रह गया था कि उसे राजसेवकोंको सँभालना पड़ा । आज भी उसकी लगभग वही दशा है। वह महाराज कृष्णदेवरायका अतिथि होकर आया है राज्य - भ्रमण - यात्रामें और राजशिविरको देखकर आश्चर्यसे दिङ्मूढ़ बन गया है ।

'पाँच-पाँच खण्डोंके तम्बू-पूरा महल, दरबार, घरोंकी कतारें कपड़ेके तम्बूमें बन सकती हैं !' उसने कभी नहीं सोचा था और उसकी कल्पनामें ही यह बात नहीं आयी थी कि ये विशाल वस्त्रगृह आधी घड़ीमें कैसे खड़े कर दिये गये। द्वारोंपर बैठे कृत्रिम केहरी, भेड़िये, व्याघ्र—कक्षोंमें कूदते-से सजीव दीखते मृग, जहाँ-तहाँ उड़नेको पङ्ख फैलाये पक्षी—वह विदेशी नेत्र फाड़-फाड़कर देख रहा था। उसे लगता था—'हिंदू बादशाह जादूगर है।'

'आप प्रसन्न तो हैं !' जब महाराजने उसके कंधेपर हाथ रख दिया, वह चौंक पड़ा। भूमितक झुककर उसने अभिवादन किया।

'हमारे कलाकारोंने ये मूर्तियाँ इसलिए बनायी हैं कि हमें यह स्मरण रहे कि मनुष्य भवनोंमें बन्द रहनेके लिए उत्पन्न नहीं हुआ है।' महाराज कृष्णरायने उसे बताया—'मनुष्यको वनमें जाना है। इन पशु-पक्षियोंके साथ मित्रकी भाँति रहना है और समस्त जगत्‌को बनानेवाले परमात्माकी आराधना करनी है।'

'ये बुत हैं ? जानदार नहीं हैं ये ?' उस विदेशी राजदूतने महाराजकी बात सुनी ही नहीं। सुननेकी स्थितिमें नहीं था वह।

'आप किसीको छूकर देख सकते हैं।' महाराज मुसकरा उठे।

'सचमुच !' एकको छूकर उसने देखा और भलीभाँति देखकर बोला—'अजीब है। अजीब हैं आपलोग।'

'हमलोग क्या अद्‌भुत हैं ?' महाराज प्रसन्न थे।

'हमारी कौम जहाँ जाती है, कब्रिस्तान बना देती है। खून, तबाही, जुल्म और आखिर कब्रगाह या खाक हुए शहर।' राजदूतके नेत्र सजल हो आये। 'मैंने सुना था विजयनगर हिंदूराज्य है। मुझे लगा—महज शाहीर-कीव होनेकी वजह मुझे आनेकी इजाजत मिली है, मगर उस दिन आपके शहरमें आकर मैं हैरान रह गया। मन्दिरोंकी गिनती नहीं। कोई कहता था—विजयनगरमें चार हजार मन्दिर हैं और उन मन्दिरोंके बीच-बीचमें मस्जिदोंकी मीनार बड़े मजेसे खड़ी हैं।'

'इसमें क्या विचित्र बात है ?' महाराज कह रहे थे—'मुसलमान भी मनुष्य हैं। उनका धर्म वे पालन करें, इसमें किसीको क्या बाधा हो सकती है। उनके लिए मस्जिदें राज्यने बनवा दी हैं। प्रजा धर्मात्मा रहे, अपने धर्मका पालन करे, इसे देखना और इसकी सुविधा करना राज्यका कर्तव्य है। मुसलमान हमारी विश्वस्त प्रजाके

अङ्ग हैं। हमारी सेनामें उनकी पर्याप्त संख्या है। ऊँचे पदोंपर वे हैं।'

'जब मैंने देखा कि नगरमें राज, बढ़ई और मजदूर-तक कानोंमें सोनेके हीरे-मानिक जड़े गहने पहने काम कर रहे हैं, तभी समझ गया कि मैं दुनियाके सबसे खूब-सूरत नगरमें नहीं बल्कि फिरिश्तोंकी आबादीमें आ गया हूँ।' राजदूतने भावभरे कण्ठसे कहा—'लेकिन तब भी मैं होशमें नहीं था। आज मैं होशमें हूँ और जानता हूँ कि खुदाने अपने खास मुरीदोंको जमीनपर भेज रक्खा है और वे सब महज विजयनगरमें आबाद हो गये हैं।'

'हम सब मनुष्य हैं। मनुष्यका कर्तव्य है सेवा।' महाराजने बड़े सङ्कोचसे राजदूतके प्रशंसा-वाक्य सुने।

'मैंने सुना है, जैसे राजदूतको कोई भूली बात स्मरण हो आयी—महज मुस्लिम राज्योंका मुकाबला करनेके लिए विजयनगरकी बुनियाद पड़ी है।'

'किसी जातिका विरोध करनेके लिए नहीं।' महाराज गम्भीर हो गये—'अत्याचार और अन्यायका विरोध करके त्रस्त मानवताको परित्राण देनेके लिए।'

'आप यह कर सकेंगे?' राजदूतने प्रश्न स्पष्ट किया—'आज हर कौम खुदगर्ज और जुल्मपरस्त होती जा रही है। आप-जैसे फरिश्ते कितने हैं रूये जमींपर?'

'हम नहीं कर सकेंगे, यह हम जानते हैं। हम जानते हैं हमारा प्रयत्न व्यर्थ होनेके लिए है।' महाराजके स्वरमें

तनिक भी निराशा नहीं थी—'हमारे शास्त्र कहते हैं कि यह कलियुग है। इस युगमें अन्याय, अनाचार, असंयम बढ़ेंगे ही। लेकिन इससे हुआ क्या? हम शुभके लिए प्रयत्न करते हैं, यही पर्याप्त है हमारे लिए। हम अपना कर्तव्य करेंगे।'

'फरिश्ते हैं जनाब।' राजदूतने फिर भूमितक झुक-कर अभिवादन किया।

'मनुष्य हैं हम। जिसमें कर्तव्यनिष्ठा नहीं, वह तो मनुष्य ही नहीं।' महाराजका स्वर बड़ा गम्भीर था—'भारतीय मनुष्योंने युग-युगसे कर्तव्यपालनका आदेश प्राप्त किया है।'

महाराजके मनमें उनका आदर्श वाक्य घूम रहा था—'मस्तक देना है। मस्तक देनेको उद्यत रहना है। कर्तव्यपर बलि—जीवनकी इससे बड़ी भी कोई सफलता है?'

चेतन कहाँ है ?

'कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ।'

'रॉविन ! हल्लो राँविन ! मैं सफल हो गया। मैंने चेतनको पा लिया !' टेलीफोनपर इतने उच्च स्वरसे चिल्लानेकी आवश्यकता नहीं होती, यह बात महान् वैज्ञानिक डा० एमर्सन न जानते हों, यह तो सोचना ही मूर्खता होगी। लेकिन दार्शनिकको भाँति वैज्ञानिक भी बालक ही होता है। वह भी तो चिन्तनशील है। अपनी तल्लीनतामें वह संसार, संसारके नियम और शिष्टाचार-को तो क्या, अपने आपको भी भूल जाता है। उसका रोष और उसकी उत्फुल्लता—दोनोंमें वह बालकके समान निर्द्वन्द्व रहता है।

'तुमने ट्यूबके प्रोटीन कणोंको देख लिया ?' दूसरी ओरसे बड़ा गम्भीर स्वर आ रहा था—'लेकिन ठहरो ! मुझे आने दो। इस समय तुम अपने-आपमें नहीं हो, ट्यूब टूट सकता है और तब तुम्हारा सब परिश्रम···नहीं, रुको ! मेरे आनेसे पहिले ट्यूबको छूना मत।'

वैज्ञानिक जब सफल होता है, तब बालकके समान नाच उठता है। उसे पता नहीं रह जाता कि वह अपनी

प्रयोगशालामें है और उसके उछलने-कूदनेसे पता नहीं, कितना विनाश वहाँ हो सकता है। सफलताके इस आवेगमें अनेक महान् वैज्ञानिकोंने अपनी बड़ी-बड़ी हानियाँ कर ली हैं। डा एमर्सनको ठीक समयपर सावधान किया गया था। वे टेलफोन रखकर अपनी गद्देदार कुर्सीपर धप्से बैठ गये। लेकिन उनके मुखके भाव स्पष्ट कह रहे थे कि उन्हें यह रोकना अच्छा नहीं लगा है। उनके नेत्रोंमें बालकोंके समान भोला कुतूहल था और अपनी परीक्षण-नलिकापर ही उनके नेत्र लगे थे।

'रॉविन ! रॉविन !' बाहर मोटर रुकनेका शब्द होते ही डा० एमर्सन इस प्रकार दौड़े जैसे छोटा बच्चा कोई पुष्प या पत्ता पा जानेपर माताको दिखाने दौड़ता है। वे वृद्ध एवं प्रतिष्ठित गम्भीर वैज्ञानिक—लेकिन इस समय उनका दौड़ना तथा उत्साह देखने योग्य था। उनका चश्मा मेजपर ही छूट गया और उज्वल अलकें ललाटपर झुक आयीं। अपने मित्रके बढ़े हुए हाथको उन्होंने देखा ही नहीं, वे तो उसके गलेमें दोनों भुजाएँ डालकर लिपट गये।

'तुमने कुछ नहीं पाया है। व्यर्थ फूलो मत ! 'रॉविन-का उद्देश्य अपने इस मित्रके उत्साहातिरेकको कुछ घटा देना था, जिसमें कोई दुर्घटना न हो और परीक्षण-नलिका-का ठीक निरीक्षण हो सके 'तुम्हें चेतन या जीवनतत्त्व नहीं मिला है। भूलमें हो तुम। तुमने पाये हैं प्रोटीनके

कुछ निर्जीव कण, जीवन-तत्त्वका देह या आहार—जो भी संज्ञा तुम उसे देना चाहो।'

'क्या ?' डा० एमर्सनका उत्साह सचमुच समाप्त हो गया। 'मेरे प्रोटीन कण-सजीव नहीं हैं ?'

'यह तो हम दोनों अभी देखेंगे।' रॉविनने कमरेमें आकर परीक्षण-नलिका उठा ली। उन्हें भी दुःख ही हुआ अपनी बात ठीक होती देखकर। बिना कुछ कहे उन्होंने डा० एमर्सनको संकेत किया नलिका देखनेका।

'हे भगवान् !' बड़ी दयनीय स्थिति होती है जब एक वैज्ञानिक अपने किसी मुख्य प्रयोगमें असफल होता है। आप कल्पना कर नहीं सकते। महीनों रात-दिन एक करके, भूख-प्यास भूलकर, संसारकी समस्त बातोंसे अपना सम्बन्ध-विच्छेद करके प्रयोगशालामें अपनेको बंदी बना ले, बिना थके, बिना सोये लम्बी अवधितक नाना प्रकारके रासायनिक पदार्थोंको उठाने, धरने, मिलाने, उबालने तथा अनेक प्रकारकी क्रियाओंमें लगा रहे ; दीर्घकालीन संयम, सावधानी और प्रतीक्षाका फल जब उसे मिले निराशा—डाक्टर एमर्सन दोनों हाथोंपर सिर धरे चुपचाप बैठे थे।

'निराश होनेसे क्या होगा मेरे मित्र !' रॉविनकी भी समझमें नहीं आ रहा था कि क्या कहकर वे अपने मित्रको आश्वासन दें।

'तुमने कैसे बिना देखे अनुमान कर लिया कि मेरे प्रोटीन निर्जीव हैं ?' डा० एमर्सनने अपने मित्रकी ओर

जिस दृष्टिसे देखा, उसमें सन्देह नहीं था, यह कहना कठिन है।

'बड़ी सीधी बात है।' रॉविनने लम्बी श्वास ली—'तुम जानते हो कि मैं भी अपने क्षेत्रमें लगभग यही प्रयोग कर चुका हूं। वनस्पतिके प्रोटीन मेरी नलिकामें बनानेमें मैं भी सफल हो गया था; किंतु वे निर्जीव प्रोटीन निकले थे।'

'ओह !' मनुष्यमें अनेक बार दुर्भावना भी कुछ स्फूर्ति दे जाती है। मित्रपर सन्देह करके एमर्सनमें जो मस्तक उठानेकी शक्ति आयी थी, सन्देह नष्ट होते ही वह भी चली गयी। उनका मस्तक फिर झुक गया। उनका मुख इतना विवर्ण हो गया था कि देखकर डर लगता था।

'हमें प्रारम्भसे पुनः विचार करना चाहिये।' रॉविनने धैर्य देनेका प्रयत्न किया—कहीं प्रारम्भमें ही भूल हो रही है।'

'ठीक !' जैसे डा० एमर्सनको कुछ सूत्र मिल गया। वैज्ञानिकके लिये घोर निराशासे फिर जागरूक हो जाना और पहले की भाँति प्रयोगमें जुट पड़ना एक साधारण बात है। वह इसका अभ्यस्त होता है। 'हम पुस्तकालय-में बैठेंगे।'

दोनों वैज्ञानिक मित्र प्रयोगशालासे अपने निजी पुस्तकालयमें चले आये।

× × ×

[२]

डाक्टर एमर्सन प्राणिशास्त्रके महान विशेषज्ञ हैं। उन्होंने चिकित्सा-शास्त्रको अनेक अद्भुत उपहार दिये हैं। लेकिन उनकी खोजका मुख्य विषय जीवन-तत्त्व है। चेतन क्या है ? इस प्रश्नका वे व्यावहारिक समाधान चाहते हैं। दूसरे सभी वैज्ञानिकोंकी भाँति विकासवादमें उनका विश्वास है। सृष्टिमें किसी विशेष परिस्थितिमें जीवनतत्त्वका अविर्भाव जड़ पदार्थोंसे ही हुआ, यह उनकी मान्यता है। लेकिन वैज्ञानिक मान्यतापर तो नहीं चला करता। मान्यतामें निहित सत्य जबतक उसकी प्रयोग-शालामें अपनेको प्रकट न कर दे, इसे वैज्ञानिक-सत्य कैसे माना जा सकता है।

डा० एमर्सनने पहले कुत्तों तथा दूसरे पशुओंके भ्रूण लेकर उन्हें प्रयोगशालामें पालन किया कुछ घण्टोंके गर्भको निकालकर उससे जीवित स्वस्थ पशु प्राप्त करनेमें उन्हें जो सफलता मिली, वह तो सभी जानते हैं। कुछ घण्टे ही क्यों—परीक्षण-नलिकामें ही पशुके वीर्य एवं मादाके रज आदि उपकरणोंको एकत्र करके जीवित पशु-शावक पाया जा सकता है, उनके इस सिद्धान्तको भी वैज्ञानिकोंने स्वीकार ही कर लिया है।

जीवन-तत्त्व कैसे उत्पन्न होता है ? बड़े परिश्रमसे यह शोध पूर्ण हो गयी है कि पृथ्वीकी किस प्रारम्भिक अवस्थामें, किस प्रकार के जलवायुमें, किन तत्त्वोंके संयोगसे जीवनतत्त्व व्यक्त हुआ होगा। बड़ी सावधानीसे

गत तीन वर्षोंसे डाक्टर एमर्सन इसी शोधमें लगे हैं। अपनी प्रयोगशालामें उन्होंने प्रकृतिकी वह प्रारम्भिक अवस्था, वही जलवायु, वही वातावरण उत्पन्न कर लेनेमें सफलता प्राप्त कर ली। अपनी परीक्षण-नलिकामें वे उन तत्त्वोंको एकत्र कर सके, जिनके मिलनेसे जीवन-तत्त्वके व्यक्त होनेकी सम्भावना है।

डाक्टर रॉविन मित्र हैं डाक्टर एमर्सनके। उनकी ख्याति यदि डा० एमर्सनसे अधिक नहीं है तो कम भी नहीं है। वे वनस्पति-विज्ञानके विशेषज्ञ हैं और उन्हें भी जीवन-तत्त्वकी ही शोधकी धुन है। यह दूसरी बात है कि उनके प्रयोग जीवित प्राणियोंके माध्यमसे न होकर लता-पौधोंके माध्यमसे चलते हैं। 'प्रथम वनस्पति-कण कैसे उत्पन्न हुआ ?' यही उनकी भी समस्या है।

अन्तर इतना है कि लगभग एक-सा वातावरण अपनी प्रयोगशालामें निर्मित करके भी डा० रॉविन लगभग एक महीने पहले सफल या विफल, आप जो कहना चाहें, वह हो गये—अपने परिणामपर पहुँच गये और उसके मित्र डाक्टर एमर्सनको एक महीने बाद उसी परिणामपर पहुँचना पड़ रहा है।

'प्रोटीन ही जीवन-तत्त्व है, यह मानना भूल है।' रॉविनने कहा—'वह जीवन-तत्त्वका वाहक या उसका आहार मात्र है।'

दोनों ही वैज्ञानिक अपनी-अपनी प्रयोगशालामें, अपनी प्रयोग-नलिकामें नवीन प्रोटीन कण बनानेमें—

उत्पन्न करनेमें सफल हो गये थे ; किंतु उनके यन्त्र-निर्मित वे कण सजीव नहीं थे। वे केवल निर्जीव कण और उन्हें बाहर डाल दिया जाता तो सरलतासे वे चींटी या दूसरे किसी सजीव प्राणीका आहार बन सकते थे।

'किसी जड़-तत्त्वमें चेतन नहीं है। किसी जड़ तत्त्वके किसी भी प्रकारके मिश्रणसे किसी दशामें चेतन अर्थात् जीवन-तत्त्वकी उत्पत्ति नहीं हो सकती।' अपने पुस्तकालयमें डा० एमर्सनने एक बड़ी पुस्तक बंद करते हुए कहा—'जीवन-तत्त्वको उत्पन्न किया जा सकता है, यह मान्यता ठीक नहीं है। हमारा काम अब केवल यह रह जाता है कि जीवन-तत्त्व है क्या ? चेतन इन जड़-तत्त्वोंसे ठसाठस भरे जगत्में कहाँ रहता है ? उसके व्यक्त होनेके नियम क्या हैं ?'

'अब तुम्हें दार्शनिक बन जाना चाहिए।' रॉविन हँस पड़े, 'तुम यह क्यों भूलते हो कि चेतन यदि स्वतन्त्र तत्त्व है तो उसमें इच्छा एवं बुद्धि भी हो सकती है। उसे तुम अपनी परीक्षण-नलिकामें आनेके लिए विवश नहीं कर सकते। फिर तो उसकी शोधके लिए कदाचित् तुम हिमालयकी किसी कन्दरामें बैठना पसन्द करोगे।'

'धन्यवाद मित्र !' डा० एमर्सन उछल पड़े—'सचमुच भारतकी सहायताके बिना हम चेतनकी शोध नहीं कर सकते। तुम मेरे साथ चलना अस्वीकार नहीं कर सकते। हिमालयसे अधिक उपयुक्त स्थान तुम्हारी

गत तीन
अपने मित्र घासोंके मिलने और उनपर प्रयोग करनेका दूसरा
-नहीं हो सकता।'

× × ×

[३]

'जीवन-तत्त्व क्या है ?' दोनों प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंको भारत आनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी थी। वे कोई राजनीतिज्ञ नहीं थे कि भारत-सरकार यहाँ उनके पीछे गुप्तचर लगा रखती। उनकी सुविधाकी पूरी व्यवस्था की गयी थी; किंतु जब उन्होंने सब प्रकारकी सुविधा-सहायता अस्वीकार कर दी, उनको इच्छानुसार घूमने और जो रुचे—करनेको स्वतन्त्र छोड़ दिया गया। वे कहाँ गये यह पता लगानेका उपाय नहीं था। गढ़वालके पर्वतोंमें वे कहीं अदृश्य हो गये थे। किसे पता था कि वे गङ्गोत्रीसे भी आगे इरावतीकी धाराके सहारे चलकर भटक गये हैं। डा० रॉबिन अद्भुत गुल्म-लताओंकी खोजमें अपने मित्रको इधर ले आये थे। सहसा एक दिगम्बर तेजस्वी जटा-जूटधारी वृद्धको देखकर दोनों उसके पास पहुँच गये थे।

'ऐसा क्या है जो जीवन-तत्त्वसे भिन्न है ?' वैज्ञानिकोंने भारतमें पूरे दस महीने केवल इस बातमें व्यतीत किये थे कि अपने कामके शब्दोंको वे संस्कृत या हिंदीमें बोलना सीख लें। उन्हें किसी भारतीय योगीसे मिलना था और जहाँ सच्ची इच्छा होती है, सफलता

वहाँ पहलेसे विजयमाला लिये खड़ी रहती है। हिमालय...' निविड़ गहन प्रदेशमें मिलनेवाले वलीपलित निर्द्वन्द्व दिगम्बर महापुरुष कोई अद्भुत योगी होंगे, यह वैज्ञानिकोंको समझानेकी आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने महापुरुषसे इधर-उधरकी बातें न करके सीधा प्रश्न किया और उनसे भी परिचय आदिकी जिज्ञासा न करके उत्तरमें प्रश्न ही पूछा गया।

'ऐसी बात ?' दोनों वैज्ञानिकोंने एक दूसरेकी ओर देखा। नीचेसे ठोस पत्थरकी एक कङ्कड़ी उठाकर उन्होंने महापुरुषकी ओर बढ़ा दी—'यह एकदम निर्जीव है।'

'तुम क्या चाहते हो ?' महापुरुषने खुले हाथपर कङ्कड़ी पड़ी रहने दी—'एक छोटा पुष्प या एक जीवित प्राणी ?' वैज्ञानिकोंमें एक वनस्पति-शास्त्री है और एक प्राणि-शास्त्री, सम्भवतः यह बात उनसे छिपी नहीं थी।

'एक धीरे चलनेवाला कीड़ा ?' वैज्ञानिकोंने फिर एक दूसरेका मुख देखा। भारतीय योगियोंके चमत्कारकी बात वे बहुत सुन चुके थे। उन्हें ऐसा प्राणी नहीं चाहिए था जो फुर्रसे उड़ जाय।

'इसे मारना मत !' मुट्ठी बंद नहीं की गयी थी। हाथपर रक्खी कङ्कड़ीका रङ्ग वही था; किन्तु वह हिलने लगी थी और जब डा० एमर्सनने अपने हाथपर उसे लिया तो देखते रह गये एकटक। वह सचमुच एक सुकोमल कीड़ा था। जो बात प्रयोग शाला में वर्षोंके

गत ...

...नसे शक्य नहीं हुई, बिना किसी उपकरणके वह यहाँ कैसे साध्य हो सकी ?

'चेतन कहाँ है ? कहाँसे आया वह इसमें ?' वैज्ञानिकोंने बड़ी नम्रतासे पूछा।

'चेतन कहाँ नहीं है ? चेतन ही तो है यह पूरा विश्व।' महापुरुष एक बार रुके, सम्भवतः वे समझ गये कि उनकी बात दार्शनिक भले समझ ले, वैज्ञानिकके लिए समझना कठिन है। 'जहाँतक इस कीड़ेकी बात है—यह एक जीव है। इसे इस कीड़ेकी योनिमें जन्म लेना ही था। मैं इस बातको जान सकता हूँ, एक कङ्कड़ीको अपने संकल्पसे तुम्हारे निर्जीव प्रोटीनकी भाँति प्रोटीनमय शरीरमें बदल सकता हूँ और इस जीवको उस शरीरमें आकर्षित कर सकता हूँ।'

'आपने कंकड़ीको ही जीव नहीं बनाया है?' वैज्ञानिकोंने साथ ही पूछा।

'नहीं भाई।' महापुरुष हँसे—'नित्य तत्त्व बनाया नहीं जा सकता। चेतन तो नित्य तत्त्व है। लेकिन तुम यह भी समझ लो कि चेतनका संचालन, आकर्षण भी चेतन ही कर सकता है। तुम्हारे जड यन्त्र उसे किसी देहमें आकृष्ट नहीं कर सकेंगे। यह तो चेतनके संकल्पसे ही साध्य है।'

'आप क्या कहना चाहते हैं ?' वैज्ञानिकोंने स्पष्टीकरण चाहा।

'परमात्मा—मैं परमात्माकी बात कह रहा हूँ।' महापुरुषने गम्भीर स्वरमें बताया—'वही परम चेतन है। वह चेतन जीवोंका संचालक है, वही सर्वेश्वर है। वह परम चेतन कहाँ नहीं है ?'

वैज्ञानिकोंने श्रद्धासे मस्तक झुका दिया। लेकिन जब उन्होंने फिर सिर उठाया, तब महापुरुष पासके सघन वनमें कहीं अदृश्य हो चुके थे।

सात्त्विकता विजयिनी है

'जय महाकाल !' लेकिन सुपुष्ट कण्ठका गम्भीर जयघोष दीवालोंमें प्रतिध्वनित होकर भी जैसे शून्य रह गया। इतनी उदासीनता तो भगवान् महाकालके मन्दिरमें कभी नहीं रही है। मन्दिरका प्राङ्गण मालव-गणनायकोंसे भरा है—उन मालव-गणनायकोंसे, जिनकी पराक्रम-परम्परा भारतीय वन्दियोंके कण्ठ अहर्निश गान करते हैं। किंतु आज तो जैसे सबपर एक अद्भुत उदासी छायी है। तप्ताङ्गार-से तेजोमय मुख मानो भस्माच्छादित हो रहे हैं। सबने मस्तक झुका रक्खे हैं। आगत तरुणने एक बार चारों ओर देखा। मुख्य द्वारसे वह बिना किसी ओर देखे सीढ़ियोंसे उतरा था और मन्दिर तकके लिये भीड़ने जो मार्ग छोड़ रक्खा है, उससे गर्भगृह तक आ गया था। भगवान् महाकालको प्रणिपात करके उसने जयध्वनि की। 'क्यों एक कण्ठ भी उसका साथ नहीं दे रहा है? उसे आश्चर्य हुआ।

'जय महाकाल' घंटेको हाथ ऊपर करके उसने बजाया, फिर जयनाद; किंतु वही शून्यता मिली उसे। वह प्रणिपात करके गर्भ-गृहसे बाहर आया। 'आज क्या

मालव-गणनायकोंमें भगवान्‌का जयघोष करने जितनी भी श्रद्धा नहीं ?' झुँझलाकर बिना किसी व्यक्ति-विशेष-को लक्ष्य किये उसने पूछा।

'उज्जयिनीसे बाहरके दीखते हो भाई ! एक वृद्ध गणनायकने कहा—'आज इस उत्साहका क्या अर्थ है ? मिहरकुलकी सेनाएँ मथुरासे आगे बढ़ चुकी हैं। मालव-गणनायक भगवान् महाकालकी शरण में श्रद्धासे ही एकाग्र हुए हैं, लेकिन हूणोंके उद्धत आक्रमणके इस घोर कालमें मन्दिरोंमें और कितने समय यह श्रद्धा-गद्‌गद जयघोष गूँजेगा—कौन कह सकता है।'

'मिहरकुल शिवभक्त है न ?' तरुणने आश्चर्यसे वृद्धकी ओर देखा।

'सो तो है।' वृद्धके स्वरमें जैसे वेदना एवं व्यंगका तीक्ष्ण विष उतर आया-पर दुःखभञ्जक मालव-मुकुटमणि महाराज विक्रमने जिनके चरणोंमें अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की—वे भगवान् महाकाल म्लेच्छकी दयासे अछूते रहेंगे, यही तो तुम कहना चाहते हो ? हम जानते हैं, वह शैव है। शिव-मन्दिरोंको वह ध्वस्त नहीं करता। लेकिन मथुराके मन्दिरोंका वहाँ खँडहर खड़ा है। मार्गके ग्राम-तक खँडहर हो गये। सतियोंको सतीत्वकी रक्षाके लिये कुएँ, सरोवरों और चिताकी शरण लेनी पड़ी। अबोध शिशु पिशाचोंके भालोंपर उछाले गये। नृशंस आतता-यियोंका अपार समुदाय उमड़ा आ रहा है अवन्तीकी ओर और उनका अग्रणी शैव है—इतना कहकर तुम

संतोष करना चाहते हो। मालवाकी पीठस्थ मूर्तियाँ अपने पावन पीठोंपर प्रतिष्ठित न रहें, मालव सतियोंका सतीत्व सुरक्षाके लिये चिता या कूपोंकी शरण देखे—मालव-नगर-ग्राम खँडहर बने खड़े हों तो ये मालव-सम्राट् महाकाल यहाँ क्या करेंगे ? हम तो इनकी शरण आये हैं। इन्हींसे पूछने आये हैं। ये रहेंगे—पर इनका जयघोष भी होगा या बन्द किया जाय ?'

'जयघोष तो होगा !' तरुणके नेत्र जैसे अङ्गार हो उठे—'महाकालका जयघोष न बन्द हुआ है न होना है। भगवान् तो हमारे साथ हैं। हमारी भुजाएँ शिथिल हो जायँ—इस कायरताका दोष······।'

'मालव-योधा कायर हैं ?' एक साथ क्रुद्ध शतशः कण्ठ गूँजे।

'मैं किसी शूरका अपमान नहीं करना चाहता ! तरुण-नें उसी निर्भय स्वरमें उत्तर दिया—'मालव-भूमि आज पुकार रही है। भगवान् महाकाल कदाचित् अपनी मुण्ड-माल पूर्ण करना चाहते हैं। म्लेच्छवाहिनीको उसकी धृष्टताका उत्तर देना ही है। शूर कायर नहीं हो तो संग्रामके लिये उसे सहायकोंकी अपेक्षा भी नहीं होती। सिंह [कभी नहीं गिनता कि गीदड़ोंका दल कितना बड़ा है।'

'तुम्हारा परिचय भाई ?' वृद्धने बड़े सौम्य, स्नेहपूर्ण कण्ठसे पूछा।

'मेरा नाम यशोधर्मा और मैं मालव हूँ।' तरुणने स्थिर धीर-भावसे कहा—'शत्रु जब सीमान्त पदाक्रान्त करता हो, परिचयका अधिक अवकाश नहीं हुआ करता। मैं चलता हूँ। मुण्डमाली प्रभु मेरे साथ हैं—कोई और न भी हो तो। जय महाकाल!'

'जय महाकाल!' शतशः कण्ठ गूंजे और खड्गोंने अपनी चमकसे दिशाओंको उज्ज्वल कर दिया 'हम सब तुम्हारे साथ चलते हैं।

जहाँ आत्मबलिका अदम्य उत्साह है, जहाँ निष्कलुष, निःस्वार्थ गौरवमय त्याग है, वहाँ अनुयायियोंकी अपेक्षा हो या न हो, उनका अभाव नहीं हुआ करता।

'जय महाकाल!' यशोधर्माका अश्व उड़ा जा रहा था। उड़े जा रहे थे उसके पीछे शतशः अश्व और उनकी संख्या बढ़ती जाती थी—बढ़ती ही जा रही थी।

'जय महाकाल!' किसानोंने खेतोंमें हल पटक दिये और खड्ग सम्हाल लिया। कारीगरोंने अपने कला-कौशल-को स्थगित कर दिया। मालव-माताओं एवं कुलबधुओंने बिना पूछे पुत्रों एवं पतियोंके भालपर कुंकुमका तिलक करके उनके हाथोंमें तलवार पकड़ा दी। नगर-के-नगर, गाँव-के-गाँव सैनिक-शिविर बन गये।

'जय महाकाल!' यूथ-के-यूथ घुड़सवार, दल-के-दल पैदल आते हैं—आते-जाते हैं। कोई नहीं पूछता—'कहाँ जाना है? क्या करना है? सैन्यदल बढ़ता जा रहा है—

बढ़ता ही जा रहा है। सहस्र-सहस्र बलिदानी शूरोंका वह सैन्यदल। सम्पूर्ण मालवा सैनिकोंका शिविर—ग्राम-ग्रामसे मूँछें उमेठते, भाले उछालते खिले मुख उमड़ते चले आते मालव-योधा—'महाकालकी मुण्डमालामें अपना मस्तक सम्मिलित होगा क्या ?' बड़ा अद्‌भुत उत्साह है।

'जय महाकाल !' गूंज रही हैं दिशाएँ। धूलसे दिवस भी संध्या-सा म्लान बनता जा रहा है। म्लेच्छ-वाहिनीने इसे देखा और उसके पैर उखड़ गये। मगधके सम्राट् जिसके भयसे निद्रा नहीं ले पाते वह मिहरकुल—लेकिन मिहरकुल कोई भी हो, वह मनुष्य ही है। वह सम्राटोंके साम्राज्य ध्वस्त कर सकता है; किंतु यदि भगवान् महाकाल पृथ्वीके प्रत्येक तृणको सैनिक बनाकर खड़ा कर दें—मिहरकुलको लगा कि मालवका तृण-तृण मनुष्य बन गया है और उसके विरुद्ध शस्त्र लेकर दौड़ पड़ा है।

'जादू ! जादू है यह।' मिहरकुलने चिल्लाकर कहा—'किसी जादूगरने करामात की है, लौटो ! पूरी गतिसे पीछे लौट चलो।' म्लेच्छ-वाहिनी लौट नहीं रही थी—भाग रही थी !

× × ×

[२]

'जादू ! जादूगर यशोधर्मा !' मिहरकुल जबसे पराजित होकर मालव-सीमान्तसे लौटा है, पागल-सा हो गया है। वह एकान्तमें भी बार-बार पैर पटकता है, मुट्ठियाँ

बाँधता है और अपने होंठ दाँतों से काट लेता है। वह निसर्ग-क्रूर—किसी कर्मचारीको कोड़े लगाने या गर्दन उड़ा देनेकी आज्ञा दे देना उसके लिये सदा साधारण बात रही है और इन दिनों तो वह उन्मत्त हो रहा है। 'मुझसे भी वह जादूगर विजय छीन ले गया।'

'महेश्वरकी जय!' महामन्त्रीने प्रवेश किया। किसी प्रकार मिहरकुलका क्रोध शान्त न हुआ तो किसी भी दिन उनका मस्तक धड़से पृथक् कर देनेकी वह आज्ञा दे बैठेगा। कोई उपाय होना चाहिये मिहरकुलके मनकी दिशा बदलनेका। हूण-महामन्त्रीने उपाय सोच लिया है, बड़े परिश्रमसे साधन एकत्र करके वे स्वीकृति लेने आये हैं। हाथ जोड़कर बड़ी नम्रतासे उन्होंने कहा—'काश्मीर विश्वकी सौन्दर्य-भूमि है। श्रीमान्‌की सेवामें इस सौन्दर्य-भूमिकी कुछ सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियाँ······।'

'क्या बकते हो?' चिल्लाया मिहरकुल। 'गंदी नालीके कीड़ोंके साथ तुम मिहरकुलकी गिनती करना चाहते हो?' उसने इतने जोरसे घूसा पटक दिया कि सामने रक्खी हाथी-दाँतकी रत्न-जटित चौकी टूट गयी।

'मैं···—।' महामन्त्री थर-थर काँपने लगे। उनके मुखसे शब्द निकल नहीं पा रहा था।

'फूलोंसे खेलना बच्चोंका काम है और फूलोंको खाकर नष्ट कर देना गन्दे कीड़ोंका काम।' मिहरकुल गम्भीर बना बोल रहा था—'तुमने कभी मुझे विलासी देखा है? मैं महेश्वरका आराधक—प्रलयङ्कर महारुद्रका दास।

ध्वंसविनाश मेरी उपासना है। भव्य नगरोंके खँडहर मेरा यशोगान करते हैं। मैं महेश्वरके श्रीअङ्गमें जनपदोंको श्मशान करके उनकी विभूति अर्पित करनेकी महती कामना हृदयमें सेवित करता हूँ। वीणाकी पिन्-पिन् और छुई-मुई-सी लड़कियोंकी चें चें, पें-पें मेरा मनोरञ्जन करेगी ? मेरा मनोरञ्जन !'

'श्रीमान् !' जैसे मन्त्रप्रेरित कोई कार्य हो रहा हो, मिहरकुलकी दैत्याकार भयङ्कर आकृति। उपसचिव हाथ जोड़े कक्षमें आ खड़ा हुआ। केवल नेत्रोंके संकेतसे ही उसे अपनी बात कह देनेकी आज्ञा मिल गयी। उसने निवेदन किया—'सामनेके शिखरपर पूरे सत्ताईस महागज चढ़ाये जा चुके हैं। नीचे जनसमूह श्रीमान्‌की प्रतीक्षा कर रहा है।'

'ठीक !' मिहरकुल उठ खड़ा हुआ। 'मन्त्रि-श्रेष्ठ ! मिहरकुलका मनोरञ्जन आपका मनोरञ्जन कर सके तो साथ चल सकते हैं।'

मिहरकुलका मनोरञ्जन—कदाचित् ही संसारमें कोई इतना क्रूर आयोजन कभी करे। एक पर्वतकी एक दिशा मिट्टी एकत्र करके ढालू बना दी गयी है और उस ढालके सहारे किसी प्रकार चलते-फिरते पर्वतों-जैसे हाथी पर्वतके शिखरपर पहुँचा दिये गये हैं। शिखरपर पहुँचाकर उनकी सूंड़ और पैर जंजीरोंसे जकड़ दिये गये हैं। बेचारे हाथी हिलतक नहीं सकते।

हूण सैनिकोंने खड्ग उठाकर जयघोष किया और मिहरकुल उनके मध्य होता आगे आ खड़ा हुआ। उसे तड़क-भड़क स्वीकार नहीं। साज-सज्जा वह सदा अनावश्यक मानता है। मैदान साधारण स्वच्छ भर किया गया है। लेकिन मैदानसे मिहरकुलको करना भी क्या है। दोनों पैर फैलाकर दोनों हाथ कमरपर रखकर वह खड़ा हो गया पर्वत-शिखरकी ओर मुख करके।

शिखरपर हूण-सैनिकोंने मोटे-मोटे लट्ठोंके सहारे एक हाथीको धक्का दिया। बेचारा हाथी गिरा और लुढ़क पड़ा। चिग्घाड़ मारता पर्वतसे गिरिशृङ्गके समान लुढ़क चला वह दीर्घकाय गज। उसकी क्षण-क्षण बढ़ती करुण चिग्घाड़—स्थान-स्थानसे टकराता, लुढ़कता, चिथड़े बनता शरीर—मांस, रक्त, मेदका लुढ़कता लोथड़ा—और 'हाँ ; हाँ' करके अट्टहास करके नीचे उसे देख-देखकर प्रसन्न होता मिहरकुल।

एक, दो, तीन—एकके बाद एक गज लुढ़काया जा रहा है। नीचे सैनिकों तकके भालपर स्वेद आ गया है। उनके पैर काँप रहे हैं। उन्होंने नेत्र बन्द कर लिए हैं; किंतु मिहरकुल—वह क्या मनुष्य है? वह तो पिशाच है पिशाच। चल रहा है उसका पैशाचिक मनोरञ्जन! उच्चस्वरसे वह बार-बार पुकार रहा है—'एक और! एक और लुढ़कने दो!!'

'श्रीमान्!' सहसा प्रधान सेनापतिका घोड़ा दौड़ता आया। स्वेदसे लथ-पथ, हाँफते हुए अस्त-व्यस्त सेनापतिने

मर्यादानुसार 'महेश्वरकी जय !' का जो घोष किया, वह भी थके, भयाकुल कण्ठसे और घोड़ेसे कूदकर मिहरकुलके पास आ खड़ा हुआ।

'रुको दो क्षण !' मिहरकुल अपने मनोरञ्जनमें बाधा पड़ने नहीं देना चाहता था। उसने सेनापतिकी ओर देखा-तक नहीं।

'श्रीमान् ! समय नहीं है।' सेनापतिने आतुरतासे कहा—'यशोधर्माकी अपार सेनाने चारों ओरसे नगर घेर लिया है। अपने सैनिक गिरते जा रहे हैं।'

'यशोधर्मा !' चौंककर मिहरकुल घूम पड़ा—'कहाँ है यशोधर्मा ?'

'ठीक कहाँ है यह कैसे कहा जा सकता है। लगता है कि नगरके सभी मोर्चोंपर वही है।' हूण-सेनापति ठीक कह रहा था। यशोधर्माका अश्व इतनी त्वरासे अपनी सेनाके समस्त अग्रिम मोर्चोंपर घूम रहा था कि स्वयं उसके सैनिक समझते थे कि उनका प्रधान सेनापति उनकी टुकड़ीके ही साथ है। हूण-सेनापति इससे और भी अस्त-व्यस्त हो उठा था। उसने कहा—'बहुत सम्भव है—कुछ क्षणोंमें वह यहीं दिखायी पड़े। इस पर्वतपर होकर ही निकल जानेका मार्ग रहा है।'

'जय महाकाल !' दिशाएँ गूंज रही थीं। नगरद्वार लगता था टूट चुके। कोलाहल पास आता जा रहा था।

मिहरकुलके लिए भाग जानेको छोड़कर दूसरा कोई मार्ग रहा ही नहीं था।

× × ×

[३]

'सम्राट् यशोधर्माकी जय !' बहुत चाहा यशोधर्माने जयघोषको अटकानेका ; किंतु जनताके उत्साहको कोई आबद्ध कर सका है ?

'सम्राट् !' जयघोष समाप्त होनेपर जब मालव-गण-नायकोंके प्रतिनिधियोंकी ओरसे वृद्ध महासेन खड़े हुए, उन्हें यशोधर्माने रोक दिया—'यशोधर्मा न राजा है और न सम्राट् है, वह मालवका एक सैनिक है, एक नागरिक है, एक सेवक है और एक सेवक ही रहना चाहता है।'

'कोई माताके उदरसे राजा या सम्राट् होकर जन्म नहीं लेता श्रीमान् !' वृद्धने हँसते हुए कहा—'मालव-भूमिमें तो गणनायक जिसे सम्राट् बना दें वही सम्राट् होता है और गणसभाकी अवज्ञा करनेका अधिकार किसी-को नहीं है। यशोधर्माको भी नहीं।'

'मैं गणसभाका विनम्र सैनिक हूँ।' यशोधर्माने हाथ जोड़ लिए ! 'लेकिन पवित्र मालवभूमिके सम्राट् एकमात्र भगवान् महाकाल हैं। यशोधर्मा उनका तुच्छ सेवक होने-में ही अपना गौरव मानता है।'

'ब्रह्मपुत्रसे महेन्द्र पर्वततक और हिमालयसे पश्चिम-समुद्रतक जिसकी भुजाओंके शौर्यने मालव-गणकी विजय-

ध्वजा फहरायी है, मालव-भूमि उसे अपनी कृतज्ञताका उपहार देगी।' वृद्धने हाथ पकड़कर यशोधर्माको सिंहासन पर बैठा दिया।

'आजके इस महोत्सवके समय पड़ोसियोंको भी कुछ उपहार मिलना चाहिए सम्राट्! जयघोष एवं अभिषेक-समारोह समाप्त होनेपर जब मालव-गणनायक मर्यादा-नुसार अपने उपहार अर्पित कर चुके, वाकाटक-नरेश हरिषेण उठ खड़े हुए।

'मालव कृतघ्न नहीं होते।' यशोधर्माने हरिषेणको अपने पार्श्वके आसनपर बैठानेकी व्यवस्थाका संकेत सचिव-को करते हुए घोषणाकी—'सङ्कटके समय वाकाटक नरेशने अपनी सीमावृद्धिके प्रयत्नके स्थानपर अवन्तीको सहायता देनेकी उदारता दिखायी, इसे हम भूल नहीं सकते।'

'मेरी माँग बहुत बड़ी नहीं है!' हरिषेणने निर्दिष्ट आसनपर बैठनेके लिए कोई उत्सुकता नहीं व्यक्त की। वे अपने आवाससे समारोहके अन्तमें आये थे और अभी खड़े ही थे। अपनी बातसे उन्होंने सबको चौंका दिया—'भगवान् महाकालका जयघोष करने और उनकी अभय-छाया पानेका अधिकार वाकाटकको भी है, इसके प्रतीक-की भाँति महाकालके प्रतिनिधिके अभिषेकका अधिकार मिलना चाहिए।'

'वाकाटकप्रदेश मालव-सम्राट्को सम्राट् मानेगा?' मालव-गणनायकोंने एक दूसरेकी ओर बड़ी उत्सुकतासे देखा।

'हम तो आपके सदाके मित्र हैं।' यशोधर्माने बड़े सङ्कोचसे कहा।

'लेकिन मैं सम्राट्का मित्र नहीं, पार्श्वचर होनेका गौरव चाहता हूँ।' हरिषेण स्थिर खड़े रहे। उनके सेवकने उनके करोंमें अभिषेकका मङ्गल स्वर्णथाल दे दिया।

'भगवान् महाकाल निखिल ब्रह्माण्डनायक हैं।' यशोधर्माने बाधा नहीं दी। 'उनके पार्श्वमें आनेसे हम किसीको कैसे वारित कर सकते हैं।'

'भगवान् महाकालकी जय!' जन-समूह आनन्दसे उल्लसित हो उठा। कोई सशक्त, समृद्ध नरेश इस प्रकार किसीको सम्राट् स्वीकार कर ले—बड़ी अद्भुत और बड़ी ही गौरवमय बात थी मालवगणके लिए।

'लेकिन आजके उपहार इन चमकते पदार्थोंसे पूर्ण नहीं होते!' समारोह समाप्त होने जा रहा था कि यशोधर्माने उठकर एक नवीन सन्देश सुनाया—'अब भी मातृभूमिका भय दूर नहीं हुआ है। ये स्वर्ण एवं रत्न; किंतु अभी तो देशको शूरोंकी आवश्यकता है।'

'वाकाटककी वाहिनीको इस बार विजय-गौरव मिले।' हरिषेण फिर उठकर खड़े हुए—'मालव-योद्धा शान्त नहीं हुआ करते, यह मैं जानता हूँ, किंतु यशमें अपने सहयोगियोंको भाग देनेका औदार्य भी उनमें होना चाहिये।'

'मालव और वाकाटक पर्याप्त नहीं हैं, महाराज !' यशोधर्मा कह रहे थे—'युद्धसे युद्धको दबाया जा सकता हैं, मिटाया नहीं जा सकता। मिहरकुल भाग गया है। कोई नहीं जानता कहाँ है वह। और कब उसके नृशंस आक्रमण देशको ध्वस्त करने लगेंगे।'

'वह अभी साहस करेगा ?' अनेक मालव-शूरोंने एक साथ पूछा।

'वह पराजित होनेवाला शूर नहीं है। यशोधर्माने कहा—'जबतक मैं उससे प्रत्यक्ष मिल न लूं, उसके सम्बन्धमें कुछ कह नहीं सकता। लेकिन इतना निश्चित है कि चुप नहीं बैठेगा। उसे ढूंढ़ना पड़ेगा, यदि देशको निर्भय करना है।'

'उसे ढूंढ़ना पड़ेगा ?' हरिषेण और वृद्ध मालव-गण-नायकतक चौंके—'क्या काश्मीरसे असम-प्रदेश (आसाम) तकका पर्वतीय प्रान्त इतना क्षुद्र और सुगम है कि उसमें किसी सौ-दो सौ सैनिकोंके दलको ढूंढ़ा जा सके ?'

'कार्य चाहे जितना कठिन हो, जिसे करना ही है, उसे अस्वीकार करनेसे लाभ ?' यशोधर्माने दृढ़ निश्चय सुना दिया—'मैं कल ही प्रस्थान करूंगा और देशके इस महाभयको समाप्त कर देनेके लिये उन सब शूरोंका आह्वान करूँगा जो भगवान् महाकालकी विजयमें विश्वास करते हैं।'

'जय महाकाल !' मालव तरुणोंने एक साथ उद्घोष किया। भारतके गौरवप्राण तरुणोंने कब धर्मयुद्धके

आवाहनको अस्वीकार किया है ? जो आज कर देते।

× × ×

[४]

'जय महाकाल !' मिहरकुल स्वप्नमें भी चौंक पड़ता है। 'जादूगर यशोधर्मा।' मिहरकुल इस जादूगरसे संत्रस्त हो गया है। कैसा है उसका जादू ? जङ्गलकी घास, खेतोंके पौधे और कदाचित् पर्वतोंके पत्थर भी उसके जादूसे सैनिक बनकर उठ खड़े होते हैं और युद्ध करने दौड़ पड़ते हैं।'

पर्वतोंके मार्गसे वन-वन भटकता बेचारा मिहरकुल ! उसमेंके सैनिकोंकी संख्या घटती जा रही है। कोई भूखों मरता है, कोई पर्वतसे लुढ़ककर गिरता है और कोई कच्ची हिममें लुप्त हो जाता है। पहाड़ी जड़ें, पत्ते, कड़वे-कषैले फल—किसी प्रकार पेट भरना पड़ता है। आखेट भी कभी-कभी हो पाता है। घोड़े हों तो आखेट प्राप्त हो और घोड़े या तो छोड़ने पड़े या हिममें लुढ़क गये। अब तो दो-चार बच रहे हैं।

हूण-सैनिक—ये पर्वतीय युद्धके अभ्यस्त, कठोर-देह, विकटाकार, धैर्यशाली क्रूर सैनिक भी हिमालयकी शीत, हिम और निरन्तर भटकते रहना कहांतक सह सकते हैं ? बहुतोंने चुपचाप अपना मार्ग लिया। कुछ वन-पशुओंकी भेंट हो गये। जो बचे हैं—कब तक बचे रहेंगे ?

'यशोधर्मा आ रहा है !' दुर्बल, क्षीण-काय मिहरकुल—वह जिधर भटकता निकलता है, जिस दिशासे जनपदोंके पास पहुँचना चाहता है, उसे एक ही समाचार मिलता है—'यशोधर्माकी असंख्य सेना चढ़ी आ रही है।'

'यशोधर्मा ! काश्मीरमें नेपालमें, असममें—जिधर जाओ उधर यशोधर्मा ! यशोधर्माकी असंख्य सेना !' मिहरकुल ठीक समझ नहीं पाता कि कितने यशोधर्मा हैं। कितनी सेना है उनकी। जादूके अतिरिक्त यह सब कैसे हो सकता है, यह उसकी समझमें नहीं आता—नहीं आ सकता।

'महाकालकी जय !' स्वप्नसे चौंका मिहरकुल और उठकर बैठ गया—'मैं भी तो उसी महाकाल-महेश्वरका उपासक हूँ। क्या अपराध किया है मैंने महाकालका ? मैंने रुद्रकी अर्चना के लिये ही इतने ध्वंस किये और वही प्रलयङ्कर मुझसे अप्रसन्न होता गया ?'

उसने उठकर हाथ-पैर धोये, आचमन किया और बैठ गया नेत्र बन्द करके—महेश्वर ! प्रलयङ्कर महारुद्र ! तूने क्यों एक जादूगर मेरे पीछे लगा दिया है ? क्या दोष है मेरी आराधनामें ? मिहरकुलने कहाँ अपना स्वार्थ सिद्ध किया है ?' उस पाषाण-जैसे दीखनेवाले मिहरकुलके नेत्रोंसे भी धाराएँ चल रही थीं उस दिन।

'जय महाकाल !' जब हिम-शिखर अरुणोदयकी अरुणिमा लेकर सिंदूरारुण हो रहे थे, ध्यानस्थ मिहरकुलने चौंककर नेत्र खोल दिये। एक गौर-वर्ण शस्त्र-सज्ज

कान्तिमान् पुरुष उसके सामने खड़ा था। मिहरकुलने स्थिरभावसे पूछा—'कौन ?'

'यशोधर्मा !' बड़े शान्त स्वरमें उत्तर मिला।

'यशोधर्मा ?' मिहरकुलको विश्वास नहीं हुआ।

'हाँ !' बहुत छोटा उत्तर था।

'यशोधर्मा ! तब तू मेरे प्राण छोड़ दे।' मिहरकुलने दीनतासे कहा—'मैं मानता हूँ—महेश्वरकी तुझपर कृपा है। महेश्वरको छोड़कर किसीके आगे न झुकनेवाला मिहरकुलका सिर तेरे चरणोंपर झुकता है।' सचमुच चरणोंपर मस्तक रख दिया उसने।

'तुम महेश्वरको ही मस्तक झुकाओ भाई !' यशोधर्माने झुककर उठा लिया मिहरकुलको—'मैं तुम्हारे प्राण लेने नहीं आया। तुम्हें महेश्वरका संदेश देने आया हूँ।'

'क्या ?' फटे नेत्रोंसे देखता रह गया वह हूण-सम्राट्।

'महेश्वर केवल प्रलयके समय प्रलयङ्कर होते हैं !' यशोधर्माने शान्तस्वरमें कहा—'देखते नहीं उन महाकालका यह सुविस्तृत श्वेत स्वरूप ! वे महाकाल आशुतोष शिव हैं। जगत्की रक्षा—प्राणियोंका पालन उनका व्रत है। क्रूरता नहीं बन्धु ! सात्त्विकता उनकी सच्ची सेवा है। उठो ! चीन-हिंदसे पश्चिमोत्तर प्रदेशतकका तुम्हारा समस्त प्रदेश तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। तुम शक्ति-

शाली हो, महान् हो, विश्वको महेश्वरका यह पावन संदेश दो।'

'तुम सचमुच विजयी हो यशोधर्मा!' मिहरकुलके नेत्र भर आये। 'सचमुच सात्त्विकता विजयी है। लेकिन मुझे अब राज्य नहीं चाहिये। मैं तो महेश्वरकी उस उत्तुङ्ग विभु सात्त्विकताकी उपासना करने जा रहा हूँ।'

सैनिक उस छोटे-से पर्वतीय शिविरको घेरे खड़े थे। जब यशोधर्मा बाहर आये—हूण सैनिक मस्तक झुकाये उनके पीछे चले आये। स्वयं यशोधर्माने मस्तक झुका रक्खा था। मिहरकुल चला जा रहा था दूसरी ओर हिमश्रेणियोंमें दूर-दूर—और उसकी वह धुँधली छाया धीरे-धीरे नेत्रोंसे अदृश्य हो गयी!
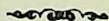
संस्कृतिके प्रेरक

'जय एकलिङ्ग !'

'जय एकलिङ्ग !' स्वभाववश प्रतिध्वनिकी भाँति कण्ठसे गम्भीर उत्तर निकलते-न-निकलते महाराणा अस्त-व्यस्त गुफाद्वारकी ओर दौड़े। यह चिरपरिचित स्वर, नाभिसे उठनेवाली परा वाणीका यह जयघोष राजस्थानके आराध्य चरणोंको छोड़कर दूसरे कण्ठसे निकल नहीं सकता। द्वारपर दण्डकी भाँति महाराणा पृथ्वीपर सवेग प्रणत हुए। उनका स्वर्ण-मुकुट पाषाणपर घर्षित होकर झङ्कृत एवं कान्तिमान् हो गया। जैसे विनतने अपनी शुभ्रता व्यक्त कर दी हो।

'कल्याणमस्तु !' महाराणाके मस्तकपर जो वली-पलित कर आशीर्वाद देने फैल गया था, उसकी दिव्य छाया सुरपतिके लिए भी स्पर्धाकी ही वस्तु रहेगी।

'गुरुदेव !' पतिके चरणोंसे तनिक हटकर जीर्ण मलिन वस्त्रोंमें चित्तौड़की अधिष्ठात्रीने अपने यशोधवल भालसे भूमिका स्पर्श किया।

'सौभाग्यवती हो वीरमातः !' वृद्ध कुलगुरुकी दृष्टि नन्हे अमरकी ओर थी, जो उनके चरणोंपर मस्तक रखकर शीघ्रतासे गुफामें भाग गया था और अब एक नारिकेल-पात्रमें जल लिए आ रहा था।

'तू क्या कर रहा है ?' स्नेहसे गुरुदेवने पूछा।

'अर्घ्य दे रहा हूँ !' बालकने अपनी तोतली वाणीसे बताया। वह जलकी धारा गिराकर पात्र रिक्त कर चला था। वृद्धने स्नेहसे उसे खींच लिया। वे उसके मस्तकको वात्सल्यसे सूँघ रहे थे।

'प्रभु पधारें !' एक शिलापर महारानीने कुछ तृण बिछा दिये थे और बड़ी कठिनाईसे उनके भरे कण्ठसे ये शब्द निकलते थे। आज राजस्थान-सम्राट्के समीप दूसरा पात्र भी नहीं कि उससे कुलगुरुके चरणोदकका सौभाग्य प्राप्त हो। महारानीकी चिन्ता व्यर्थ नहीं थी; परन्तु गुरुदेवके पादपद्म तो हिंदूकुलसूर्यने अपने नेत्रोंके जलसे धो दिये थे।

एक युग था। मानवको किसी उपकरणकी आवश्यकता नहीं थी। वह भगवती महाशक्तिकी खुली गोदमें निरन्तर महेश्वरका ध्यान करता था। उसके अन्तरकी श्रद्धा ही आराध्यका पूजोपकरण बनती और अतिथिका सत्कार ! कुलगुरुने आसन स्वीकार कर लिया था। बालक अमर अभी उनकी गोदमें ही था। महाराणा उनके चरणोंके समीप मस्तक झुकाये हाथ जोड़े बैठे थे और बिना पीछे देखे भी वे जानते थे कि उनकी सह-

धर्मिणी उनकी ओटमें अपने अश्रु-प्रवाहको छिपानेका असफल प्रयास कर रही है।

'प्रताप !' तुम्हारे त्यागने सत्ययुगकी उस सात्त्विकताको यहाँ साकार कर दिया है !' ब्राह्मणके दीप्त भालकी ज्योति दुगुनी जगमगा उठी। उनके नेत्र अर्धोन्मीलित हुए और निर्वात दीपशिखाकी भाँति उनका निष्कम्प चित्त महेश्वरके ध्यानमें एकाग्र हो गया।

'सृष्टिके आदिमें कुलपुरुष भगवान् भास्करने जिनकी आत्मरूपसे आराधना की, पितामह वैवस्वतसे लेकर रघुवंशके आराध्य भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने राजसूय-अश्वमेधादि महायज्ञोंसे जिनकी अर्चा की, वे साक्षात् भगवान् वैश्वानर पधारे हैं, देवि !' महाराणाने पीछे देखा। उन्होंने संकेतसे ही पुत्रको गुरुदेवकी गोदसे नीचे बुला लिया था।

'अपने कङ्काल कुटीरमें आज समिधाएँ भी कहाँ हैं ?' राजमहिषीकी वेदना दूसरा कोई कैसे समझेगा। महीनोंसे महाराणा प्रातःकालीन हवन समिधाओंसे ही सम्पन्न कर रहे हैं। इस वनमें शाकल्य और घृत कहाँ। आज साक्षात् अग्निस्वरूप गुरुदेव पधारे हैं ; परन्तु गुफामें तो सूखी समिधाए भी नहीं हैं। केवल जलसे अपने कुलगुरुकी अर्चना पूरी करनी है। और वह भी उसे, जो चित्तौड़का राजमुकुट सिरपर धारण करता है। दैव !......।

'प्रताप ! धन्य हो तुम !' गुरुदेवके नेत्र कुछ क्षणोंमें ही खुल गये। 'तुम्हें स्मरण है न—प्रत्येक कुम्भपर्वपर

तीर्थकी पावनभूमिमें भारतके सम्राट् अपना सर्वस्व दान कर दिया करते थे ! एक ऐसे ही समय, जब महाराज रघुके समीप एक ऋषिकुमार पहुँचे, महाराजके समीप पाद्य एवं अर्घ्यके लिए केवल मृत्तिकाके पात्र थे !'

'गुरुदेव ! महाकवि कालिदासकी वाणी जिस यशोगानसे परिपूत हुई है, उसे कैसे विस्मृत किया जा सकता है ; किंतु प्रतापका सर्वस्व क्या ? कङ्काल है वह ।'

'राणा ! धर्मके सङ्कटकी पुण्यतिथिमें जिसने अपने सर्वस्वकी आहुति दे दी है, उस कङ्कालकी यशोगाथासे कवियोंकी वाणी पावन होगी ! मैं आज चक्रवर्ती रघुके उस यज्ञान्तका स्मरण कर रहा हूँ ।'

'देव ! सन्तोष भी जिनके श्रीचरणोंसे प्रेरणा प्राप्त करता है, उनकी शाश्वत तुष्टिमें बाधा दे सके, ऐसी शक्ति कहाँ है !' महाराणाकी वाणी आगे कुछ कह न सकी ; किंतु उनकी दृष्टि उस रिक्त नारिकेल जलपात्रपर थी, जो औंधा पड़ा था और वह दृष्टि अपनी व्यथा सुनानेके लिए वाणीकी अपेक्षा नहीं करती थी ।

[२]

'जय एकलिङ्ग !' एक वन्य भीलने भूमिपर लेटकर प्रणाम किया और एक भूर्जपत्र आगे बढ़ा दिया । इस गुफामें इन निष्काम सेवकोंका प्रवेश अबाध है । अन्ततः इन्हींकी सेवा तो महाराणाको यहाँ निरापद रखती है ।

'जय एकलिङ्ग !' महाराणाके कण्ठसे बड़ी कठिनता-से यह ध्वनि इधर निकलती है। वे इसके साथ ही चौंक पड़े। पत्रको ध्यानसे देखा, जैसे वह कोई विषैला जन्तु हो। 'पत्रमें पाँच तहें हैं, पाँच ही बार उनपर सूत्र लपेटा गया है। सूत्र भी पीत है, श्वेत नहीं। तब पत्र किसी अपने अनुचरका है।' दाहिने हाथमें पत्र ले लिया उन्होंने।

'एक राजपूतने दिया है ! वह उत्तरकी प्रतीक्षा करेगा घाटीके उस पार ! कहता था, दिल्लीसे आया है !' भीलके स्वरमें घृणा, तिरस्कार, उपेक्षा, उत्कण्ठा—पता नहीं क्या-क्या थी। वह स्थिर दृष्टिसे राणाकी ओर देख रहा था।

'दिल्लीसे आया है ?' राणा चौंके। पत्र हाथसे छूट गया।

'दिल्लीसे पत्र !' महारानीने सुना और पास आ गयीं। उनके नेत्रोंमें विस्मय था।

'उस दिन वन-बिलावने तुम्हारी घासकी रोटी कुमार-के हाथसे छीन ली और वह क्रन्दन कर उठा !' महाराणा नीचे गिरे पत्रकी ओर मस्तक झुकाये स्थिर देख रहे थे।

'रहने भी दीजिये ! बालकोंकी रोने-गानेकी बातोंपर ध्यान देकर कहाँतक कोई कर्तव्यपर स्थिर रह सकता है !' वाणीमें चाहे जो कह लिया जाय, पर माताका हृदय क्या ऐसे स्मरण शान्तिसे सह पाता है ?

'मैं भी अन्ततः मनुष्य ही हूँ—दुर्बल मनुष्य! मेरे धैर्यकी सीमा समाप्त हो गयी उस दिन। मैंने अकबरको पत्र भेज दिया।' महाराणा-जैसे किसी महापापकी गाथा सुना रहे हों।

'पत्र! अकबरको? क्या······

'यही कि मैं उसकी राज्य-सत्ताको स्वीकृति दे दूंगा यदि·········।'

'यदि वह आपपर, आपके बच्चेपर, आपकी स्त्रीपर दया करे! आपको कोई दरबारमें बड़ा पद······।' जैसे वज्रपातसे सिंहिनी चीत्कार कर उठी हो वह। जङ्गली भील उस महाशक्तिके चरणोंकी ओर पृथ्वीपर मस्तक रखकर बड़े जोरसे चिल्ला पड़ा—'जय एकलिङ्ग!'

'मैं आज प्रातः गुरुदेवके दर्शनार्थ गया था।' महाराणा अपराधीकी भाँति मस्तक झुकाये कहते जा रहे थे। गुरुदेवके नामने महारानीको तनिक शान्त कर दिया।

'मेरे प्रणिपातका उत्तर नहीं मिला। गुरुदेव हवन-कुण्डके समीप विराजमान थे। समिधाएँ प्रज्वलित नहीं हो रही थीं। धूम्रसे उनके नेत्र अश्रुपूर्ण एवं अरुण हो गये थे, जैसे उन दयामयने मेरे अपराधपर उठे रोषको भीतर ही रोक लिया हो। महारुद्रके समान वे लाल-लाल नेत्र अश्रुसे करुणापूर्ण हो गये थे।' महाराणाने दोनों हाथ मस्तकपर रख लिए। उनके नेत्रोंसे टप-टप बूंदें गिर रही थीं।

'पहली बार प्रतापको गुरुचरणोंसे आशीर्वाद नहीं मिला। उन तपोमयके आशीर्वादका अधिकारी अब मैं रहा ही नहीं। बड़ी ही वेधक करुणदृष्टिसे उन्होंने मेरी ओर देखा।' दो क्षणके लिए वाणी रुक गयी।

'आदियुगमें अग्निदेव ब्राह्मणके हृदयमें निवास करते थे। कल्मष था ही नहीं, तब शासन और पवित्रता किसकी की जाय। त्रेताके अन्ततक ब्राह्मणकी वाणी ही भगवान् वैश्वानरका वाहन थी। नरेशोंकी विशुद्ध श्रद्धासे सम्पन्न हुए यज्ञोंमें विप्रोंके सङ्कल्पसे मूर्तिमान् अग्निदेव प्रकट हो जाते थे। देवता स्वयं अपना भाग आकर स्वीकार करते थे। द्वापरका अन्तिम चरणतक साक्षी था कि जनमेजयके सर्पसत्रमें भी अग्निज्वालाएँ मन्त्रपाठका अनुगमन करती थीं। ब्राह्मणके लिए अरणिमन्थन केवल उपचारमात्र था। अग्निदेव तो आह्वानकी प्रतीक्षा करते रहते थे। यह कलियुग है। अग्निका धाम ब्राह्मणका मुख हो गया है प्रताप! केवल पवित्र शासन ही अग्निके उत्थानसे शुद्ध होता है। मैंने देखा है, तुम्हारी धर्मनिष्ठाने भगवान् हव्यवाह्‌का पथ नित्य प्रशस्त रक्खा है। मैंने देखा है कि मानसिंह अत्यन्त धार्मिक, श्रद्धालु एवं शुद्धाचारी हैं; पर उनके तपःपूत विप्रोंके आहवनीय-कुण्डोंसे उठी धूम्र-शिखाएँ नेत्रोंको कलुषित, पीड़ित करती हैं, प्रताप!' गुरुदेवका वह सम्बोधन महाराणाके हृदयमें बाणकी भाँति अबतक चुभ रहा है। चुभता ही जा रहा है।

'भगवान् एकलिङ्गका पवित्र नाम लेनेमें उसी दिनसे जिह्वा काँपती है। आज गुरुदेवने मस्तक झुका लिया और अब यह पत्र आया है दिल्लीसे ..... ।' जैसे कोई अपने प्राणदण्डके आज्ञापत्रको देख रहा हो।

'उसमें धागेके पाँच फेरे हैं। ये धागे पीले हैं!' भीलको स्वयं भी आश्चर्य था कि दिल्लीका पत्र इस प्रकार क्यों है।

'जय एकलिङ्ग!' जैसे महाराणामें पुनः जीवन लौट आया हो। उन्होंने पत्र खोला बड़ी शिथिलतासे था; किंतु शीघ्र ही वह शिथिलता दूर हो गयी। मुखमण्डल हर्ष, उत्साहसे दमक उठा। हाथ मूछोंपर गये और फिर कटिमें बँधे खड्गकी मूठपर।

'सिंहके शिशु बन्दी होकर भी शृगाल नहीं हो जाते! दिल्लीमें भी सिंह तो हैं। भगवान् एकलिङ्ग! गुरुदेव!' महाराणाने पृथ्वीराजका ऐतिहासिक पत्र चकित राजमहिषीकी ओर बढ़ा दिया। उनकी दृष्टि कृतज्ञतापूर्वक ऊपर उठी और श्रद्धासे मस्तक झुक गया।

× × ×

'एकलिङ्गेश्वरकी जय!' वल्गा खिचनेसे अश्वोंके अगले पैर एक क्षण उठे ही रह गये और वीरोंके कण्ठोंने आश्रमद्वारको जयघोषसे ध्वनित किया।

'जय एकलिङ्ग!' वृद्ध ब्राह्मणकी दृष्टि उठनेसे पूर्व राजस्थानका जाग्रत् शौर्य उनके पदोंमें प्रणिपात कर रहा था।

'महामन्त्री भामासाहका त्याग प्रतापका प्रोत्साहन बन गया है और भीलराजकी वन्यवाहिनी अदम्य है। विजयश्री तो श्रीचरणोंके आशीर्वादकी अनुगामिनी है! महाराणा कुलगुरुके चरणोंके समीप सरल भावसे बैठ गये थे घुटनोंके बल। जैसे कोई आराधक अपने आराध्यके पदोंमें बैठा हो। महामन्त्री संकुचित पीछे करबद्ध खड़े थे और आश्रमद्वारपर जानु टेके भीलराज अपनी पीछे खड़ी सेनाके आगे ऐसे लगते थे जैसे शूरताकी उत्तुङ्ग जलराशि इस सत्त्वके पुलिनसे पवित्र होने आयी हो और उसे मर्यादाने साकार होकर सीमित कर दिया हो।

'धर्म नित्य विजयी है! वह आशीर्वादकी अपेक्षा नहीं करता! भगवान् हव्यवाह तुम्हारा मार्ग प्रशस्त करें!' आचार्य अब भी हवनके आसनपर ही खड़े थे। सम्मुख कुण्डमें आहुतितृप्त अग्निदेवकी निर्धूम लाल-लाल सीधी लपटें उठ रही थीं—लाल-लाल लपटें, ब्राह्मणके त्याग, तप संयम एवं क्षत्रियके शौर्य, ओज, प्रचण्ड प्रताप-की प्रतीक। महाराणाने अतृप्त उल्लसित नेत्रोंसे दो क्षण अग्निदेवके दर्शन किये और फिर भूमिपर मस्तक रक्खा।

'ब्राह्मण—नित्य तुष्ट, प्रभुकी इच्छामें अपनी इच्छा विलीन करनेवाला, सबका शुभैषी होता है, प्रताप!' गुरुदेवकी वाणी स्नेह-स्निग्ध थी। 'उसके लिये न कोई शत्रु है, न मित्र। न दण्डनीय है और न स्नेह-पात्र; किंतु जब शासक शिथिल होता है, तब ब्राह्मणकी वृत्ति

विकृति हो जाती है। उसकी शक्ति प्रकृतिके राजस क्षेत्रमें उन्मुक्त नहीं हो पाती !'

'गुरुदेव !' महाराणा इस वाणीका मर्म जानना चाहते हैं।

'ब्राह्मणकी तपस्या और पवित्रताके साथ शासकका अदम्य शौर्य अपेक्षित है, संस्कृतिके इस प्रोज्ज्वल प्रतीकको धूम्रहीन रखनेके लिये !'

'ओह !' महाराणाको बिलम्ब नहीं लगा समझनेमें। उस दिन उन्होंने सोचा था कि गुरुदेवके हवनीय-कुण्डसे भी धूम्र क्यों उठना चाहिये और दयामय गुरुदेवने केवल संकेत किया था। आज इस यात्राके समय एक आदेश है इसमें उनके लिये। उन्होंने खड्ग खींच लिया और यज्ञाग्निके सम्मुख मस्तक झुका दिया। गुरुदेवका हाथ उनके मस्तकपर छाया करता फैल गया था।

इतिहास साक्षी है हिंदू-कुल-मुकुटमणिकी उस मूक प्रतिज्ञाका। वह शौर्य अन्ततक अग्नि-सा प्रज्वलित, प्रकाशमय, दुर्धर्ष रहा। सम्राट् अकबरका अपार अध्यवसाय उसमें आहुति बनकर रह गया !

—o—

आस्था

'नृमुण्डमालिनीकी जय !' जयध्वनि उच्चस्वरसे नहीं की गयी। उसने ओष्ठके भीतर ही कह लिया और मन-ही-मन खड्गहस्ता, खप्परधारिणी, आलीढासना मुण्ड-मालिनी महाकालीके पावन चरणोंमें प्रणाम करके पूर्णतः प्रस्तुत हो गया।

'सावधान ! घोर वन, तीन हजार सत्रह फुट, सत्तासी ! सत्तासी ! सत्तासी !' हवाई जहाजकी सूचना-नलिकासे आदेश मिला। एक खटका हुआ, एक हलका झटका लगा और वह आकाशमें पत्थरकी भाँति नीचे गिर रहा था।

'एक, दो, तीन, चार' हाथ पैराशूटकी रस्सी पकड़े हुए थे। यदि गिननेमें तनिक भी गड़गड़ हुई—शीघ्रतासे या अधिक रुक-रुककर गिना गया तो प्राण बचेंगे, इसका कोई ठिकाना नहीं। 'पाँच, छः, सात, आठ' वह सहज स्वाभाविक ढङ्गसे गिन रहा था। तीन हजार सत्रह फुट ऊपर आकाशसे फेंक दिये जानेपर भी मस्तिष्क व्यवस्थित रखकर ठीक-ठीक गिनना था। गिननेकी गतिमें विलम्ब

हो तो पृथ्वीपर टकराकर हड्डियाँ चूर-चूर हो रहेंगी और शीघ्रता हो जाय—पैराशूट वायुके प्रवाहमें कहाँ ले जायगा, इसका क्या ठिकाना। नीचे चारों ओर शत्रुकी ही छावनियाँ हैं। कोई पैराशूटसे उनका शत्रु सैनिक वहाँ पकड़ा जाय तो उसका स्वागत कैसे होगा—कोई भी समझ सकता है।

'नौ, दस, ग्यारह—......' गिनता जा रहा है वह। 'पचासी, छियासी, सत्तासी' अभ्यस्त हाथने रस्सी खींच दी। एक अच्छा झटका लगा। पीठपर गठरीके समान बँधा पैराशूट खुलकर आकाशमें हंसके समान तैरता धीरे-धीरे उतरने लगा।

कृष्णपक्षकी त्रयोदशीकी रात्रि है। नीचे कहीं किसी दीपककी एक रश्मितक नहीं दीखती। युद्धकालमें सर्वत्र व्यवस्थित अन्धकार रखनेकी सजगता तो दिखायी ही जायगी। वह जानता है कि उसे जहाँ गिराया गया है, वहाँ नीचे घोर वन है। यह तो प्रारब्धपर ही निर्भर है कि पैराशूट उसे कहाँ पटकता है। कँटीली झाड़ी, किसी क्रूर वन-पशुकी माँद, कोई घड़ियालोंसे भरी नदी, कोई बड़ा वृक्ष या थोड़ी समतल भूमि—सभी कुछ सम्भव है। गिरनेवाला वन-पशुओं या घड़ियालोंके पेटमें भी चला जा सकता है, काँटोंसे उसके शरीरका भरपूर बिंध जाना, गहरी चोट लगना या सकुशल उतर जाना, यह सब उतरनेवालेके लिए सम्भव है। सब उसके प्रारब्धपर है।

'माँ ! जगदम्बा !' गिनती बन्द होते ही मन-ही-मन वह अपनी आराध्य मूर्तिका ध्यान और उनका स्मरण करने लगा। नीचे कुछ देखनेका प्रयत्न उस घोर अन्धकारमें व्यर्थ था। उसे मृत्युका भय नहीं है। मृत्युको तो उसने जान-बूझकर आमन्त्रित किया है। लेकिन उसे विश्वास है--मृत्युमें इस प्रकार उसका तिरस्कार करनेका साहस हो नहीं सकता। वह 'माँ' का पुत्र है—जगद्धात्री माँ कालीका पुत्र। कलकत्तेमें माँको प्रणिपात किये बिना वह मर नहीं सकता।

'माँ ! मातृभूमिकी—तुम्हारी पावन पीठ भारत-धराकी थोड़ी-सी सेवा यह शिशु कर सके ! दयामयी जगज्जननीने जैसे उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उसके पैरोंका स्पर्श किसी वृक्षकी ऊपरी टहनीसे हुआ। एक क्षणमें पैरोंकी पकड़में एक डाली आ गयी। उसने दोनों पैर डालमें लपेट दिये। पैराशूटने पूरा झटका दिया। शरीरकी नस-नस उखड़ जायगी, ऐसा उसे लगा और पैराशूट उलट गया।

पैराशूटको टहनियोंकी उलझनसे अलग करके तह करनेमें दो मिनट लगे। पेड़से नीचे उतर आया वह। चारों ओर घोर वन है, यह अनुमान करते ही उसने समझ लिया कि उसे ठीक स्थानपर ही गिराया गया है। अब प्रातःकालतक यहीं प्रतीक्षा करना है। उसके दूसरे चार साथी भी कहीं आस-पास उतरे हो सकते हैं। तनिक झुटपुटा हो जाय तो निश्चय करे कि किधर जाना चाहिये।

सैनिक जब युद्धक्षेत्रमें होता है—'उसका प्रत्येक क्षण बहुमूल्य होता है और जब कोई सैनिक पैराशूटसे शत्रु-प्रदेशमें उतार दिया जाता है—उसका प्रत्येक क्षण कितनी सावधानीसे काममें लिया गया, इसीपर उसका जीवन निर्भय करता है। प्रातःकाल होनेसे पूर्व उसे बहुत कुछ कर लेना है। बिना आधे क्षण रुके वह अपने काममें लग गया। पैरके पास ही कमरसे छुरा निकालकर उसने गड्ढा खोदना प्रारम्भ किया। पैराशूट छिपा देना चाहिये और अग्नि जलायी नहीं जा सकती। उससे तो आस-पास-के लोग चौंकेगे। बड़ी सावधानीसे पैराशूटको उसने मिट्टीमें दबाया। बूटोंसे मिट्टी कुचलकर उसपर थोड़े सूखे पत्ते समेटकर डाल दिये, जिसमें कोई उधरसे निकले तो नयी खोदी मिट्टी देखनेसे उसे संदेह न हो।'

× × ×

[२]

'तुम्हारा नाम?'

'अनिलकुमार!'

'तुम बङ्गाली हो?'

'बङ्गाली तो मैं पीछे हूँ, पहले भारतवासी हूँ।'

'कहाँ घर है तुम्हारा!' उस धूर्त सैनिक अफसरने बँगला बोलना प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेज होते हुए भी बङ्गालमें रहकर उसने बँगला सीख ली है। 'हम तुम्हारे घर तुम्हारे स्वस्थ और सुरक्षित होनेका समाचार भेज

देंगे। तुम सैनिक सेवामें हो, यह कह दिया जायगा और पाँच हजार रुपये तुम्हारे वेतनके बताकर तुम्हारे घरके लोगोंको दे दिये जायँगे।'

'मेरा घर है महाकालीके चरणोंमें।' वह खुलकर हँस पड़ा। 'वहाँ रुपये नहीं, मस्तक भेंटमें दिये जाते हैं। तुम्हारे-जैसे अपवित्र लोगोंके मस्तक वहाँ नहीं चढ़ा करते।'

'तुम घरका पता न देना चाहो तो कोई बात नहीं!' अफसरने पूरी कूटनीतिकी परीक्षा करनेका निर्णय कर लिया था। 'तुम्हें सेनामें ले लिया जायगा। कैप्टन बनाया जाय—यह मैं लिख दूँगा और प्रयत्न करूँगा कि चार महीनेकी छुट्टी देकर घर जानेकी सुविधा दी जाय तुम्हें! उसके बाद भी तुम मोर्चेपर न आना चाहो तो पीछेके दलोंमें रक्खे जा सकते हो। मैं तुम्हारे लिये पूरा प्रयत्न करूँगा।'

'मैं सेनामें हूँ। अवकाश लेनेकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं है।' अनिलने गम्भीरतासे कहा—'मैं अपनी मातृ-भूमिका सैनिक हूँ। स्वतन्त्रताके संघर्षमें अगले मोर्चेपर रहनेकी कामना रखता है प्रत्येक देश-सेवक।'

'यह तो मैंने तुम्हारे सुभीतेके लिये कहा था' अफसर-ने जान-बूझकर अनिलकी बातका उलटा अर्थ लिया—'तुम अगले मोर्चेपर रहना चाहोगे तो बड़ी प्रसन्नतासे रह सकोगे!'

'लेकिन भारतको पराधीन रखनेवालोंका विनाश करनेके लिये मैं सैनिक बना हूँ।' अनिलने अब स्वर कठोर कर लिया—'उनकी दासता करना स्वीकार होता तो मातृभूमिसे बाहर भटकता न फिरता।'

'अभी तुम युवक हो। जापानियोंने तुम्हें भड़का दिया है।' अफसर शान्त बना रहा—'कदाचित् तुम नहीं जानते कि अंग्रेजोंने भारतको स्वराज्य देना निश्चित कर लिया है और उसके लिये योजनाएँ बनायी जा रही हैं।'

'बहुत खूब !' अनिलने हँसकर व्यङ्ग किया—'बड़े दयालु हैं आपलोग ! भला योजना बनानेकी बात क्या है ? आपलोग कल भारत और बर्मा छोड़ दें। हमलोग जापानियोंसे निपट लेंगे और अपने घरोंको सम्हाल भी लेंगे।'

'अभी तुम परिस्थितिसे परिचित नहीं हो।' अफसर-को बुरा लगा, पर शान्त ही रहा वह—'कुछ दिनोंमें ही तुम्हें सब बातोंका पता लग जायगा। अभी तो तुम इतना करो कि मैं जो पूछता हूँ उसे ठीक-ठीक बता दो। केवल जापानियोंके सम्बन्धमें तुम्हें बतलाना है। अपने देशकी सेवा ही करोगे इससे तुम।'

'मैंने आपको स्पष्ट बता दिया है कि मैं कुछ नहीं बताऊँगा।' अनिलने चौथी बार कहा—'भारतीय विश्वास-घाती नहीं हुआ करते। मुझे आप फुसला नहीं सकते और न डरा सकते हैं।'

'तुम जानते हो कि क्या परिणाम होगा ?' अफसरने भी रुख बदल दिया—'तुम शत्रुके जासूस हो, युद्धबन्दी बनानेका तुम्हारे लिए प्रश्न ही नहीं उठता। एक बार और सोच लो ! सेनामें कैप्टन हो सकते हो और घर जा सकते हो परसों। वैसे तुम्हारे तीन साथी और पकड़े गये हैं। उन्होंने वह सब बता दिया है, जो वे जानते हैं। तुम उनके नायक हो, उनसे कुछ अधिक बता सकते हो, उनकी बतायी बातें तुमसे पुष्ट हो जायँ, इतना ही हम चाहते हैं। तुम कुछ न भी कहोगे, तो भी हमारी कोई हानि नहीं होनी है।'

'तीन साथी और पकड़े गये हैं। उन्होंने सब कुछ बता दिया है।' अनिलने मस्तक झुकाकर सोचा। 'इसका केवल यह अर्थ है कि कोई एक साथी पकड़ा नहीं गया है। किसीने कुछ बताया नहीं है। यह धूर्त केवल धोखा देना चाहता है भेदनीतिसे।'

'तुम सोचना चाहो तो आधे घण्टे पीछे मैं आ सकता हूँ।' अफसरने कहा—'इससे अधिक प्रतीक्षा करनेको सेनानायक प्रस्तुत नहीं हैं।'

'मैं सोच चुका हूँ और जो कुछ कहना था, कह चुका हूँ।' अनिल स्थिर रहा।

'परिणाम नहीं सोचा तुमने !' अफसरने चेतावनी दी।

'तुमसे अधिक मैं जानता हूँ।' अनिलने उपेक्षासे कहा—'मैं महाकालीका पुत्र हूँ। मेरा परिणाम तुम्हारे हाथमें नहीं, मेरी दयामयी माँके हाथमें है।'

'आज शामको ही तुम्हें गोलीसे उड़ा दिया जायगा!' अफसर मुड़ा—'मैं एक बार और आऊँगा!'

'तुम न आओ तो धन्यवाद दूंगा!' अनिल हँसा—'सिंहवाहिनीके पुत्रको गीदड़ोंके बच्चे गोलीसे उड़ा सकते हैं, इस कल्पनाका आनन्द तुमलोग लेना चाहो तो कुछ देर ले सकते हो।'

× × ×

[३]

जापानकी सेनाएँ ब्रह्मामें बढ़ती जा रही थीं। बार-बार अंग्रेजी सेनाको 'बड़ी वीरताके साथ' पीछे हटनेको विवश होना पड़ता था। टोकियोमें श्रीरासविहारी बोसके यहाँ भारतीय देशभक्तोंकी बैठकें प्रायः नित्य होती थीं। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस उस समय बर्लिनमें थे। उन्हें ब्रह्मा लाना है--यह योजना कुछ गिने-चुने उच्च अधिकारियोंतक ही सीमित थी।

'ब्रह्मामें पर्याप्त भारतीय हैं। वे अपनी मातृभूमिकी स्वतन्त्रताके लिए किसीसे कम उत्सुक नहीं हैं। लेकिन अंग्रेजोंके प्रचारने बहुतोंको भ्रान्त कर दिया है। जापानके प्रति वे सन्दिग्ध हो गये हैं। साथ ही उन्हें प्रोत्साहित एवं सङ्गठित करनेके सूत्र भी वहाँ नहीं हैं। कुछ जापानी

अधिकारियों और रासविहारी बोसमें पहले ही यह मन्त्रणा हो चुकी थी ।

'परिणामका कुछ पता नहीं है । मातृभूमिके लिये मस्तक देना है ।' बिना किसी भूमिका और आश्वासनके स्पष्ट स्थिति जापानस्थित भारतीय देशभक्तोंके आगे स्पष्ट कर दी गयी ।

'देशके निमित्त प्राण देनेवाला धन्य है ।' जापानमें रहकर देशके लिये आत्मबलिको जाग्रत् भावनाका नित्य आदर्श देखा जा सकता है । भारतीयोंके [illegible]में त्यागका स्रोत निहित है । जापानी बलिदानी वीरोंने उसे प्रदीप्त कर दिया था । सभी भारतीय युवकों एवं तरुणोंने अपने रक्तसे हस्ताक्षर किये प्रतिज्ञा-पत्रपर ।

कुछ उपयुक्त व्यक्ति चुन लिये गये । सामान्य सैनिक शिक्षा तो सबके लिये आवश्यक थी ; किंतु कुछ लोगोंको पैराशूटसे नीचे उतरना सिखलाया गया । उन्हें सब आवश्यक बातें बतला दी गयीं । केवल सप्ताहको शिक्षा—अधिकके लिये अवकाश ही नहीं था । एक जापानी हवाई जहाज पाँच भारतीय तरुणोंको एक रात्रि ब्रह्माकी वन-भूमिपर आकाशसे उतार आया ।

पासमें नक्शे नहीं थे । वे स्मृतिमें रहे यही निरापद माना गया था । कहाँ कौन-सी बस्तियाँ हैं, किन बस्तियों-में जाना चाहिये, किन स्थानोंमें एवं बस्तियोंसे सावधान रहना चाहिये, यह सब बतला दिया गया था । टोकियोंमें सोचा यही गया था कि पाँचमेंसे एक भी बच सका तो

सफल समझना चाहिये इस प्रयत्नको। सचमुच केवल एक शत्रुओंकी आँखोंसे बच सका। चार पकड़ लिये गये।

पैराशूट ठीक बिन्दुपर किसीको गिरा सके, यह शक्य नहीं है। मील आधामील इधर-उधर हो जाना साधारण बात है। अपरिचित भूमिमें—वनमें कोई कहाँतक रटे हुए नक्शोंके आधारपर मार्ग पा सकता है। इधर-उधर भटकना पड़ा। सावधान शत्रुके जासूसोंने देख लिया। पकड़ लिए गये चार देशभक्त भारतीय सूर्योदय होनेके कुछ देरके भीतर।

'वन्दे मातरम्!' चारों अलग-अलग रक्खे गये। उन्हें प्रलोभन दिये गये। धमकाया गया और जहाँतक बना यातनाएँ दी गयीं। चारों ही अडिग थे। जापानी सेना बढ़ी आ रही थी। अंग्रेजी सेनाके सेनापतिने वीरता-पूर्वक हट जानेमें कुशल समझ ली। प्रातः पकड़े गये चारों भारतीय एक छोटे मैदानमें एकत्र हुए। उन्होंने हवाई जहाजसे गिराये जानेके बाद पहले-पहले एक दूसरेको देखा। जयध्वनि की उन्होंने।

'नृमुण्डमालिनीकी जय!' अनिलकुमारने दूसरी जयध्वनि भी की।' उसने कहा—'मित्रो! यह नाटक बहुत देर नहीं चलेगा। डरनेकी कोई बात नहीं है।'

'भारतीय मृत्युसे नहीं डरा करते। हमारे ऋषियोंने कहा है—जीवन शाश्वत है।' दूसरे तरुणने कहा—'शरीर तो मिट्टी है। जिस मातृभूमिने यह मिट्टी हमें दी उसीकी सेवामें इसे विसर्जित करनेका भला अवसर तो मिला।'

'अभी वह अवसर नहीं आया ! अनिलकी बात इस बार कोई समझ नहीं सका। वह कह रहा था – 'मुण्ड-मालिनीके पुत्रोंको छूनेका साहस मृत्यु करे तो उसे भी मरना पड़ सकता है। मातृभूमिका दिया शरीर तो उसकी गोदमें भगवती जाह्नवीके तटपर ही विसर्जित होगा।'

'यह विश्वासघात करेगा ?' दूसरे तरुणोंने एक दूसरे-की ओर देखा। दूसरा क्या अर्थ हो सकता है इसकी बातका ?' लेकिन संदेह व्यर्थ था। सैनिक अफसर अंतिम प्रयत्न करने आया अवश्य ; किंतु दूसरोंकी भाँति अनिलसे भी निराशा ही उसके हाथ लगी।

'बड़ा सुन्दर खेल है !' सामने अंग्रेजी सेनाके अफ्रिकन सैनिकोंने भरी बन्दूकें छातीसे लगा रक्खी थीं। उन्हें अफसरके मुखसे निकले केवल एक शब्दकी प्रतीक्षा थी। चार भारतीय, जिनके हाथ हथकड़ियोंसे पीछे जकड़े थे ; उनके सामने खड़े थे। बड़ा आश्चर्य हो रहा था उन सैनिकोंको मृत्युकी इस अन्तिम घड़ीमें भी ये परिहास करनेवाले—कैसे हैं ये लोग ?

'वन्देमातरम् !' एक तरुणने कहा।

'नृमुण्डमालिनीकी जय !' पहले जय—नादके बाद अनिलकुमारने अकेले जयनाद किया। 'माता जन्मभूमिकी वन्दना और उसकी सेवाके लिये तो अभी पूरा जीवन पड़ा है। यह अवसर तो महाकालीकी मनोहर क्रीड़ा देखनेका है।'

'क्रूर उत्पीडनने इसे उन्मत्त कर दिया। साथियोंके नेत्र सहानुभूतिसे भर आये।

'क्या बकता है?' सैनिक टुकड़ीके नायक अंग्रेजने आश्चर्यसे पूछा।

'तू अपना काम कर!' अनिलने उसे झिड़क दिया—मैं तेरी मूर्खता देख रहा हूँ।'

'तुझे मरनेसे डर नहीं लगता?' अफसरने फिर पूछा।

'मरनेवाला मैं हूं या तुम सब हो, यह अभी निर्णय हुआ जाता है।' अनिल बराबर हँस रहा था—'कुत्तोंकी मौत आती है तो वे सिंहनीके शावकको भूँककर डराना चाहते हैं। तुम सबने सिंहवाहिनीके पुत्रको डरानेका प्रयत्न किया है।'

'पागल!' मृत्युके भयने पागल कर दिया अनिलको। इसके अतिरिक्त उस अंग्रेजके मस्तिष्कमें और कुछ कैसे आ सकता था, जबकि अनिलके साथी ही उसे पागल समझ रहे थे।

'फाय......' शब्द पूरा नहीं हो सका था, इतनेमें बड़ा भारी धमाका हुआ। एक, दो, चार—लगातार धमाके होते चले गये। धुएँसे दिशाएँ भर गयीं। सैनिकोंने बन्दूकोंका उपयोग किया भी हो तो उन धमाकोंमें कुछ पता नहीं लगा। वृक्षोंके ऊपर या पीछे ठीक अनुमान करना कठिन था कि शत्रु कहाँ है, कितना बड़ा दल है। धमाके होते ही जा रहे थे।

'वन्देमातरम् !' धुएँके पीछेसे किसी कण्ठने पुकारा।

'वन्देमातरम् !' मैदानमें खड़े चारों बन्दियोंने उत्तर दिया।

'नृमुण्डमालिनीकी जय !' अनिलने भूमिपर मस्तक रख दिया वहीं।

अंग्रेज अफसर और हब्शी सैनिकोंके शरीर छिन्न-भिन्न हुए पड़े थे। अंग्रेजी सेना लारियोंमें बड़ी उतावलीसे भरती जा रही थी। 'वीरतापूर्वक' पीछे हट जानेके लिये तम्बू, शस्त्रागारके शस्त्र और भोजनतक साथ लेने या नष्ट करनेका अवकाश उसके पास नहीं था।

सेनापतिको जब पीछे हट जानेके दो दिन बाद पता लगा कि केवल कुछ पासकी बस्तीके लोगों और एक भारतीयने हाथसे फेंके जानेवाले बम फेंककर उसे डरा दिया—बहुत पछताया वह। समाचारको दबा देनेमें ही कुशल थी। उसके प्रकट होनेपर स्वयं उसे मरना पड़ सकता था और खोया स्थान तो खो ही गया। वहाँ तो अब जापानी अग्रिम दल पहुँच भी चुका था।

× × ×

[४]

'नृमुण्डमालिनीकी जय !' नेताजीकी सेनामें अनिल-कुमार ही ऐसा था जो प्रत्येक जयध्वनिके पश्चात् यह अपनी जयध्वनि कर लिया करता था। उसे कभी किसी-ने छेड़ा नहीं। उसके-जैसा निर्भीक, साहसी, कष्ट-

सहिष्णु—वैसे तो स्वतन्त्रताके सेवकोंकी सेना थी। नेताजीकी पूरी सेना और उसका प्रत्येक वीर अपने त्याग, सहिष्णुता एवं धैर्यमें अद्वितीय था; किंतु अनिल कुछ दूसरी ही मिट्टीसे बना था। उसे कहीं भय दीखता ही नहीं था।

'माँ! माँ! दयामयी माँ!' एकान्तमें वह प्रायः उच्च स्वरसे पुकारता और रोया करता था और जब मृत्युके भयङ्कर पञ्जे प्रत्यक्ष-से दीखते थे—वह निर्भय था। अनेक बार लोगोंको भ्रम हुआ करता था कि वह पागल है।

'नृमुण्डमालिनीकी जय!' उसे तो उस दिन भी हताश होते नहीं देखा गया, जब नेताजीने जापान लौट जानेका निश्चय किया। आजाद हिंद सेनाके वीर रो रहे थे और वह चुपचाप खड़ा था। उसने केवल इतना कहा—'मैं स्वदेश जाऊँगा।'

'अकेले?' किसीने मना नहीं किया। मना करनेका कुछ अर्थ भी नहीं था। प्रारब्धने सारे प्रयत्नको कुचलकर धर दिया था। जापान हथियार डाल चुका—अब तो भाग्यके विधानके सम्मुख मस्तक झुकाना था। उसे अनुमति मिल गयी थी। एक साथीने पूछा भी बड़े खेदसे। 'इस प्रकार मरनेसे क्या हम सबके साथ भाग्यकी प्रतीक्षा करना अच्छा नहीं?'

'मुझे मारेगा कौन?' उसे भयका कारण नहीं जान पड़ता था। यों वह इस बातसे अनजान नहीं था कि मार्ग

बहुत लम्बा है। वन हिंस्र पशुओं और उनसे भी हिंस्र नरभक्षी जातियोंसे भरा है। अंग्रेजी सेनाने सब पगडण्डियाँ घेर रक्खी हैं। लेकिन उसकी आस्था यह सब देखने नहीं देती। 'महाकालीके पुत्रको मारनेके लिए हाथ उठानेवाला मरे बिना रह नहीं सकता।'

'नृमुण्डमालिनीकी जय !' पैरोंमें छाले पड़ गये थे। वस्त्र चिथड़े हो गये थे। दाढ़ी और नख बढ़ गये थे। वन-पशु तो उसके मित्र थे। नरभक्षी लोगोंने उसका आखेट करनेके बदले उसे फल और कन्द खिलाये। यह आप विश्वास न करें तो मेरे पास कोई उपाय नहीं। लेकिन नरभक्षियोंने पता नहीं क्यों, उसे देखते ही साधु समझ लिया था। उसकी सेवा—उन लोगोंके लिए पुण्य बन गयी थी।

'तू मुझे जाने देगा या मारेगा ?' सैनिक प्रहरियोंसे सीधा प्रश्न करता था वह।

'अबे जा !' एक निःशस्त्र, फटेहाल भिखारी किसी सैनिकसे इस प्रकार पूछे तो सैनिक उसे पागल न समझे तो समझे क्या। गोली तो दूर, उसे गाली भी किसीने नहीं दी।

'नृमुण्डमालिनीकी जय !' कलकत्ते पहुँचकर तो वह सचमुच पागल-सा हो गया। वह नाचने लगा, कूदने लगा, हँसने लगा और बीच-बीचमें रोने भी लगा—'माँ ! माँ ! दयामयी माँ ! तूने मुझे पुकारा ! मैं तुझे प्रणाम करने आ गया माँ !'

कलकत्तेके काली-मन्दिरमें पुजारीके लिए उस दिन एक समस्या हो गयी। एक पागल नाचने लगा मन्दिरसे और मूर्तिके सामने दण्डवत् पड़ा तो घण्टेभर पड़ा रहा। फिर उठा और फिर पड़ गया। फाटकतक जा-जाकर लौट आता था। पता नहीं क्यों, उसे हटाने या रोकनेका साहस ही किसीको नहीं होता था।

मन्दिरका मान

(१)

'पाटनका सेनापति आया था ?' कुमार चन्द्रचूड़को समाचार मिला है कि पाटनका सेनानायक अकेला ही आज इधरसे आया है। समाचार मिलते ही कुमार अपनी साँढ़नीपर सवार हो गये। ऊँट अपनी पूरी शक्तिसे दौड़ता आया है।

पाटन और जूनागढ़की शत्रुता बहुत पुरानी है और अब तो जयसिंह नरेश जूनागढ़पर आक्रमण करनेकी योजना भी बना चुके हैं। पाटनका सेनानायक आया है तो कोई दुरभिसन्धि होगी। अकेला क्यों आया वह ? उसके सैनिक कहाँ छिपे हैं पीछे ?

कुमार चन्द्रचूड़ने अपने छोटे भाई 'रा' खेंगारको समाचार भेज दिया है। अब सेनानायक आवे, सेना आवे या स्वयं जयसिंह आवें—जूनागढ़ कुछ कोरीकी झोपड़ी नहीं कि उसे कोई उजाड़ जायगा। अबतक तो 'रा'ने सब ओर चर भेज दिये होंगे। पाटनकी सेना कहाँ छिपी है, यह बात छिपी नहीं रह सकती।

'केशव—यह पाटनका सेनानायक केशव अकेला कैसे आया ? कोई सन्देश लेकर आया होता तो उसे सीधे आना था। जूनागढ़को एक ओर छोड़कर यह इस प्रकार क्यों निकल गया ? गढ़को घेरने और अपनी सेनाके पड़ाव निश्चित करने आया हो तो ? पर अकेला—कुछ भी हो, इसे पकड़कर गढ़के तलघरमें बन्द किया और जयसिंहकी योजनाका एक पैर टूटा। इसे तो आज पकड़-कर बन्द कर ही देना ठहरा।' कुमारकी साँढ़नी दौड़ती आयी थी और उनके मनमें ये विचार उमड़ते-घुमड़ते आये थे। उनका उत्साह—आज वे उत्साहकी मूर्ति बन गये थे। पाटनके सेनानायकको पकड़ लेनेका उन्हें पूरा विश्वास था।

'काले घोड़ेपर बैठा पट्टनी सेनानायक केशव यहाँ आया था ?' कुमारने एक ग्रामीणसे पूछा। केशव आया तो इधर ही था और वह यहाँ ठहरा भी होगा। यह पानी पिये बिना वह आगे बढ़े, ऐसा नहीं हो सकता। आगेका मरुस्थल—मरुस्थलका मार्ग जब चुना है उसने, तो इस ग्रामसे जल लिए बिना काम कैसे चल सकता है उसका।

'आया तो था कुमार।' ग्रामीणने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया। 'वह धीरसिंहके यहाँ रुका था।'

कुमार चन्द्रचूड़की ऊँटनी आगे बढ़ गयी। धीरसिंह अपने द्वारपर जैसे उनका मार्ग देखता ही खड़ा था। उसने नमस्कार किया और कुमारने उसे तनिक व्यङ्गसे फटकारा—'जानते हो कौन रुका था तुम्हारे यहाँ ?'

'उसने बताया था कुमार।' धीरसिंहमें न भय जान पड़ता था, न गर्व। वह शान्त खड़ा था।

'उसने बताया था? उसे जानकर भी जाने दिया तुमने! तुम सोरठी हो?' कुमार चन्द्रचूड़के नेत्र चढ़ गये। उनका स्वर कठोर हो गया।

'मैं सोरठी हूँ। राजपूत हूँ। सोरठकी मर्यादा, सोरठ-का गौरव मेरा गौरव है। सोरठके लिए मेरा सिर चढ़ता हो तो मैं पीछे नहीं हटूँगा।' धीरसिंहकी वाणीमें जो गौरवपूर्ण ओज था, वह किसी राजपूतको ही शोभा दे सकता है। 'कुमारको मेरे सोरठी होनेमें सन्देह है?'

'मैं तुम्हारा अपमान करना नहीं चाहता।' कुमारके स्वरमें नरमी आ गयी। उनके पास यहाँ उलझनेका समय नहीं। एक-एक पल उनके लिए मूल्यवान् है। उनका शत्रु उनसे दूर-दूर होता जा रहा है। उन्हें उसे पकड़ना है। 'वह सोरठके शत्रुका सेनानायक है। कहाँ गया? किधर गया वह? मुझे मार्ग बताओ।'

'कोई हो वह' धीरसिंह उसी गम्भीर स्वरमें कहता गया—'उसने अपनेको छिपाया नहीं। अपना नाम-परि-चय बताकर उसने कहा कि वह अतिथि है। एक ब्राह्मण—एक अतिथि आवेगा और सोरठी उसे पानी नहीं देगा? उसे दूध नहीं पिलायेगा? मैंने उसे दूध पिलाया, उसके घोड़ेको पानी दिया। वह चला गया।'

'गया किधर?' कुमार चन्द्रचूड़ने आतुरतासे पूछा।

'कुमार ! वह मेरा अतिथि हुआ था।' धीरसिंहने मस्तक झुका लिया। जो उसका अतिथि बना, क्या हुआ कि वह शत्रु था। वह उसका मार्ग बताकर विश्वासघात करे ? एक राजपूत अतिथिके साथ विश्वासघात करे ?

क्या सोचते हैं आप कि कुमारने उसकी गर्दनपर तलवार दे मारी होगी ? उसे लौटनेपर पकड़वा मँगाया होगा ? जूनागढ़के स्वर्गीय 'रा' नवघनके कुमार ऐसे ही होते तो प्रजाका बच्चा-बच्चा उनके लिए सदा प्राण देनेको उत्सुक रहता ? शूर वह शूर नहीं जो दूसरे शूरकी भावनाका सम्मान नहीं करता। जो धर्मको महत्त्व नहीं देता, जो धार्मिकके आगे मस्तक नहीं झुका पाता, वह विजयी हो, सम्पत्तिका स्वामी हो और कुछ भी हो, शूर नहीं है। शूर क्रूर पिशाचको नहीं कहा करते। शूरमें शौर्य होता है तो औदार्य भी होता है। जूनागढ़के 'रा'का, उनके कुमारोंका इतिहास गुण गाता है—केवल इसलिए कि वे शूर थे। सच्चे अर्थमें शूर।

'धन्य हो तुम ! तुम-जैसे सोरठियोंसे ही सोरठका मस्तक ऊँचा है।' कुमार चन्द्रचूड़ने अपने गलेसे मोतियोंकी माला उतारकर धीरसिंहके गलेमें डाल दी। उनका स्वर गूँजा—'जय सोमनाथ !' उनकी साँढ़नी दौड़ चली।

'जय सोमनाथ !' धीरसिंह दौड़ा अपनी साँढ़नीपर चढ़नेके लिए। अपना आतिथ्य-धर्म उसने पूरा कर दिया।

अपने कुमारको अब अकेले वह शत्रुके सामने नहीं जाने दे सकता। उसे कुमारके पीछे जाना है।

× × ×

[२]

'कोई आता है?' केशवने एक बार घूमकर पीछे देखा और उसका घोड़ा दुगुने वेगसे उड़ चला। 'वह साँढ़नी।' साँढ़नीपर कौन है, यह देखनेका केशवको अवकाश नहीं। वह टीला—वह सामनेका टीला। टीले-पर उसका घोड़ा पहुँच जाय और फिर चाहे कोई आवे। 'रा' आवे या 'रा' की पूरी सेना आ जाय।

'वह जा रहा है! वह जा रहा है केशव!' कुमार चन्द्रचूड़ने भी देख लिया था दूरसे उसे। उन्होंने स्वयं उसे ढूँढ़ा था। धीरसिंह केवल उनके पीछे आ रहा था।

'इसे जब सोमनाथ जाना था, इतना चक्कर क्यों काटा इसने?' कुमारकी समझमें कुछ आ नहीं रहा था। 'केशव भगवान् सोमनाथके दर्शन करने अकेला आवे, यह कुछ मनमें आने योग्य बात नहीं। समुद्रके मार्गसे भी वह नौकासे आ सकता था और जूनागढ़में कभी किसीने भग-वान् सोमनाथके यात्रीको रोका तो है नहीं। वह सूचना देकर या बताकर आता तो बाधा क्या थी उसे।'

'बड़े काइयाँ होते हैं ये पट्टनी।' कुमार अपने-आप बोल रहे थे। 'पता नहीं कहाँ जाना था इसे। हम लोग

पीछे लगे हैं, यह इसने ताड़ लिया और इधर निकल आया।'

'अब जा कहाँ सकता है ?' धीरसिंहने ऊँटको दौड़नेके लिए अधिक उकसाया।

'तुम निरे योद्धा हो।' कुमार चन्द्रचूड़ हँसे। 'वह टीला—वह टीला देखते हो न। उस टीलेपर पहुँचनेसे पहले हम केशवको पकड़ सकें तो ठीक।'

'अब, अब, अब।' लगता था कि केशव अब पकड़ ही जायगा। घोड़ा थक गया था। पसीने-पसीने हो रहा था। कुमार चन्द्रचूड़ इतने निकट आ गये थे कि उन्होंने भाला उठा लिया दाहिने हाथमें और ललकारा—'केशव ! पाटनके सिद्धराज जयसिंहके सेनापतिके लिये भागना शोभा देता है क्या ?'

'बस यह टीला ! चढ़ तो जा बेटा !' केशवने ललकारका उत्तर नहीं दिया। उसने घोड़ेके मस्तकको थपथपा दिया।

'जय सोमनाथ !' कुमार चन्द्रचूड़ देखते रह गये। टीलेपर केशवका घोड़ा पहुँचा और वह कूदकर पृथ्वीमें भगवान् सोमनाथको दण्डवत् नमस्कार करते गिर गया।

'जय सोमनाथ !' कुमारके हाथका भाला गिर पड़ा। उन्होंने वहींसे हाथ जोड़े।

'कुमार !' धीरसिंहने टीलेपर साँढ़नी चढ़ानेके लिये जिधर मार्ग था, उधर मोड़ी और कुमारको उत्साहित किया।

'पागल हुए हो धीरसिंह !' कुमारने हँसकर रोक दिया उन्हें। 'टीलेपरसे भगवान् सोमनाथके ध्वजके दर्शन हो जाते हैं, यह भूल गया क्या तुम्हें ? अब शीघ्रता क्या है ? अब तो केशवके साथ हम भी भगवान्के दर्शन करेंगे।'

'जय सोमनाथ !' केशव टीलेपर खड़ा हो गया था। उसने बड़ी स्थिरताके साथ धीरसिंहकी ओर देखा।

'जय सोमनाथ !' धीरसिंहने भी हाथ जोड़ लिये। उसे सचमुच यह बात भूल गयी थी कि इस टीलेसे सोमनाथके गगनचुम्बी मन्दिरपर फहराती दिव्य ध्वजाके दर्शन हो जाते हैं। जहाँतक ध्वजाके दर्शन होते हैं, वह सब प्रदेश भगवान् सोमनाथका है। उस क्षेत्रमें पैर रखनेके पश्चात् प्रत्येक प्राणी निर्भय हो जाता है। सेनानायक केशव अब सोमनाथके क्षेत्रमें भगवान् सोमनाथकी शरणमें खड़ा है। किसका साहस है जो उसे छू सके। सोमनाथ—गुर्जरके आराध्यदेव, उनकी सीमामें तनिक भी इधर-उधर करते-न-करते तो सम्पूर्ण गुजरात उलट-पलट हो रहेगा। भगवान् सोमनाथकी मर्यादाका अतिक्रमण करके भला कोई गुजरातमें सकुशल रह सकता है ?

'आओ कुमार !' केशव स्वस्थ प्रसन्नमुख बोल रहा था। 'अब यहाँतक आ गये हो तो भगवान्का दर्शन किये

बिना कहाँ लौटा जा सकता है। लेकिन मेरा अश्व बहुत थक गया है।'

'हम भी विश्राम करेंगे केशव।' कुमार ऊपर आ रहे थे। 'इतने दूर तुम्हारे साथ आये हैं तो तुम्हारे साथ ही भगवान्‌के दर्शन करेंगे।'

'आपको संदेह है कि मैं लौट पड़ूँगा?' केशवने कटाक्ष किया।' 'मैं तो भगवान् सोमनाथकी यात्रा ही करने निकला हूँ। सोरठके कुमार ब्राह्मणपर विश्वास न करें तो उपाय क्या?'

'सोरठको तुमने पहले भी कभी अविश्वासी देखा है? कुमारको बात लग गयी जान पड़ती थी। 'हमें सावधान तो रहना पड़ता है; किंतु यहाँ भगवान् सोमनाथके क्षेत्रमें किसीपर अविश्वास करने और उसके पीछे रहनेका हमें क्या अधिकार है। तुम्हें बुरा लगता है तो हम यह चले। लेकिन तुम यात्रा करने निकले हो, सच कहते हो?'

'राजमाताको भगवान् सोमनाथके दर्शन करने हैं, यह तो आप भी जानते होंगे।' केशवने कहा। 'समुद्रके मार्गमें तो कुछ देखना है नहीं, इस मार्गकी तत्काल क्या स्थिति है, यह मैं स्वयं देख लूं, इस बातकी सत्यतामें संदेह क्यों हुआ आपको?'

'मार्ग देखने सेनापति निकलें और अकेले?' कुमार-की शङ्काको आप असङ्गत कैसे कह देंगे?

'मार्ग तो देखना ही था। इसी बहाने सेनापतिकी सोमनाथयात्रा भी हो जायगी। राजमाताके साथ कहीं महाराज भी आये तो केशव ब्राह्मणको तो पाटनमें ही पड़े रहना ठहरा न।' केशवने बात स्पष्ट की। 'भगवान् सोमनाथके दर्शन करने क्या सेनाके साथ आना शोभा देता मुझे। मैं तो भगवान्का एक तुच्छ किंकरमात्र ठहरा। सेना आनी होगी तो महाराजके साथ आ रहेगी।'

'अपने यहाँ भगवान् सोमनाथके यात्रीका हम सत्कार कर पाते, तुमने हमें इस योग्य भी नहीं ठहराया केशव?' कुमारके स्वरमें पता नहीं कहाँका स्नेह और करुणा उमड़ पड़ी।

'एक दीन ब्राह्मण भगवान्के यहाँ आनेको चला कुमार! उसे सेनापति बनकर नहीं, एक दीन बनकर ही आना चाहिये था न?' केशवका स्वर भी आर्द्र होता जान पड़ता था। 'राजकुलका सम्मान तो राजकुलके ही उपयुक्त है। मैं तो केवल आपकी दृष्टि बचाकर भगवान्के चरणोंतक पहुँच जाना चाहता था। आप चुपचाप लौटने दोगे तो ठीक, नहीं तो, पाटन भी तो समुद्र-तटपर ही है।'

'तुम समुद्रके मार्गसे क्यों लौटोगे केशव?' कुमारने बड़ी दृढ़तासे कहा। 'हमें तुम सत्कारका सौभाग्य नहीं देना चाहते तो न सही। जूनागढ़में जहाँसे, जिधरसे, जो कुछ देखते तुम्हें जाना हो, देख जाना। 'रा' खेंगार तुम्हारा पीछा नहीं करेंगे।'

कुमार साँढ़नीसे उतर पड़े थे। उन्होंने और धीरसिंह-ने भी भूमिमें लेटकर भगवान् सोमनाथकी ध्वजाका वन्दन किया। आधी घड़ी पहले जो एक दूसरेके शत्रु थे, वे पास-पास ऐसे बैठे थे, जैसे दो अभिन्न मित्र बैठे हों। भगवान् सोमनाथके मन्दिरके स्वर्णकलशसे ऊपर श्वेत ध्वज फहरा रहा था और उसकी छायामें तो भय, अविश्वास, आशङ्काको स्थान ही नहीं है।

× × ×

[३]

'जय सोमनाथ!'

'जय सोमनाथ!' कुमार चन्द्रचूड़ने देखा कि केशव अपना घोड़ा सजाये सामने खड़ा है। सोमनाथ पहुँचकर कुमारने यह पता ही नहीं रक्खा कि केशव कहाँ है। भगवान् सोमनाथकी इस पुरीमें किसीका पीछा करना तो अपराध है। आज सहसा केशव सम्मुख आ खड़ा हुआ। कुमारने पूछा—'प्रसन्न तो हो केशव?'

'भगवान्‌की कृपा है।' केशवने कहा। 'भगवान्‌के दर्शन हो गये। उनकी पूजाका सौभाग्य मिला। अब पाटन लौटना है। कुमार! मेरी यात्रा पूरी हो गयी। अब पाटनका सेनापति सोरठमें गुपचुप कुछ देख जाय, यह शोभाकी बात नहीं है। आप कब लौट रहे हैं?'

'केशव!' कुमार केवल सम्बोधन करके एकटक देखते रह गये।

'आपलोग कहते हैं कि पट्टनी काइयाँ होते हैं।' केशव गम्भीरतासे बोल रहा था। 'लेकिन पट्टनी अपने आराध्य-के मन्दिरका सम्मान करना जानते हैं। भगवान् सोम-नाथका यात्री आपको धोखा देकर आपके यहाँसे चला जाय, यह कैसे हो सकता है कुमार! मैं सोरठकी सीमा आपके साथ पार करूँगा।'

'सुना है जयसिंह जूनागढ़को घेरनेकी योजना बना चुके हैं।' कुमारने एक भिन्न ही बात कही।

'यहाँ खड़े होकर झूठ नहीं बोला जा सकता।' केशवने एक बार मस्तक उठाकर मन्दिरके स्वर्णकलशको देखा। 'मैं लौटा और कूच। वहाँ मेरे लौटनेकी ही प्रतीक्षा होगी महाराजको। राजमाता भगवान् सोमनाथ-के दर्शन करने आवें तो उन्हें सोरठका स्वागत नहीं, अपने पट्टनी सैनिकोंकी ही सेवा मिलनी चाहिये यहाँतक।'

'जयसिंहका गर्व तो बहुत बड़ा है।' कुमार चन्द्रचूड़ हँसे। 'लेकिन यदि उनका सेनापति लौटे ही नहीं? वह जूनागढ़के किसी तलघरकी ही शोभा बढ़ाता रह जाय?'

'यह आप कहते हैं कुमार!' केशव भी खुलकर हँसा। 'आप यहाँ हैं, इसलिए आप ऐसा परिहास कर सकते हैं। सोरठकी सीमामें पहुँचनेपर सोरठके राजकुमार यह परिहास भी नहीं कर सकेंगे, सो क्या मैं जानता नहीं हूँ। लेकिन कुमार एक बात बताये देता हूँ। महाराजकी योजना तो महाराजकी ही होती है। वह किसीके लिए अटका नहीं करती। उनका सेनापति जूनागढ़के तलघरमें

होगा तो उनकी वाहिनी दुगुने वेगसे चलेगी और अपनें सेनापतिकी मुक्तिके लिये उनके दोनों हाथ तलवार चलावेंगे ।'

'केशव ! तू हमें डराता है ?' कुमार हँसे । 'जयसिंह दोनों हाथोंसे तलवार चलाते हैं, यह तो हम भी जानते हैं ; किंतु यह तो सोरठका प्रत्येक सैनिक कर लेता है । लेकिन तुम यह ठीक कहते हो कि तुम्हें पकड़नेकी बात परिहास ही है और ऐसा परिहास भी जूनागढ़की सीमामें पहुँचकर नहीं किया जा सकता । भगवान् सोमनाथके यात्री-का अपमान करनेकी बात परिहासमें भी सोरठके किसी नागरिकके मुखसे नहीं निकलेगी ।'

'लेकिन कुमार चल कब रहे हैं ?' केशवने हँसते हुए पूछा ।

'तुम अपना रास्ता लो न । मुझे कहाँ तुम्हारे पीछे अपनी साँढ़नीको थकाना है ।' कुमार भी हँसे ।

'जब नहीं थकाना था तब तो कुमारने बेचारीको दौड़ाते-दौड़ाते थका मारा ।' केशव हँसता रहा—'अब ब्राह्मणको पहुँचाये बिना कहीं छुटकारा होता है उसका ।'

'हम ब्राह्मणका सत्कार करना जानते हैं । तुम कब चल रहे हो ?' कुमारने एक क्षणमें साथ चलनेकी स्वीकृति दे दी । उन्होंने धीरसिंहके कानमें धीरेसे कुछ कह दिया । वह वहांसे शीघ्रतासे चला गया ।

× × ×

'जय सोमनाथ !' गगनभेदी ध्वनि, आकाशको छाकर उड़ता बढ़ता आता धूलिका अम्बार, यदा-कदा उसमें जहाँ-तहाँ चलती विद्युत्-रेखा—पता नहीं कितनी सेना चढ़ी आ रही है।

'जय सोमनाथ !' कुमार चन्द्रचूड़ तथा केशवने एक साथ ध्वनि की ; किंतु केशवके स्वरमें वह उल्लास नहीं जो कुमारके स्वरमें है। उसने जिज्ञासासे कुमारकी ओर देखा।'

'सोमनाथका एक ब्राह्मण यात्री' कुमार चन्द्रचूड़के अधरोंपर हास्य आया—'जूनागढ़के 'रा' उसका स्वागत करनेका सौभाग्य छोड़ तो नहीं दे सकते।'

'रा' खेंगार मेरा स्वागत करेंगे—पाटनके सेनानायक-का स्वागत ?' केशव विस्फारित नेत्रोंसे कुमारको देखता रह गया।

'पाटनके सेनापतिका स्वागत तो जूनागढ़की तलवार करेगी। लेकिन वह तो पाटनके सेनापतिकी बात है। पाटनके सेनाके साथ ही तो केशव सेनापति है।' कुमारने गम्भीरतासे कहा—'रा' खेंगार तो भगवान् सोमनाथके यात्रीका स्वागत करने आ रहे हैं।'

'जय सोमनाथ !' कोलाहल बढ़ता आ रहा था, धूलि बढ़ती आ रही थी। 'रा'की साँढ़नी रत्नोंके आभूषणोंसे सजी झलमल करती सोनेके नूपुरोंका रणत्कार करती सामने चली आ रही थी।

'जय सोमनाथ !' कुमार चन्द्रचूड़ने पूरी शक्तिसे पुकारा और जरा-सा मस्तक झुकाकर अपने 'रा' के प्रति सम्मान प्रकट किया ।'

'रा' की साँढ़नी आयी । किसी शत्रुके सामने, किसी प्रतापीके सामने, यहाँतक कि मृत्युके सामने भी न झुकनेवाला रत्नमुकुट-सज्जित 'रा' खेंगारका मस्तक झुक गया—'जय सोमनाथ ।'

केशव जानता है यह उसका सम्मान नहीं, यह पाटनके महाप्रतापी सिद्धराज महाराज जयसिंहके प्रधान सेनापतिका सम्मान नहीं, यह भगवान् सोमनाथके यात्रीका, भगवान् सोमनाथका सम्मान है । उसका मस्तक भी झुक गया—'रा' खेंगारके सामने ? अरे नहीं, भगवान् सोमनाथके प्रति अपूर्व श्रद्धाके सामने—भगवान् सोमनाथके सामने । उसका कण्ठ यह कहते-कहते भर गया—'जय सोमनाथ !'

स्वभावविजयः शौर्यम्

'यह कापुरुषोंका कार्य नहीं है ; क्षीणकाय, हीनसत्त्व, अपङ्ग, असमर्थ—जो संसारमें कुछ नहीं कर सकते, ऐसे आलसी एकत्र कर लिये जायँ, साधनाश्रम इसके लिये स्थापित नहीं हुए हैं ।' समर्थ स्वामी रामदास निरे साधु नहीं थे । वे उन जीवनसम्पन्न महापुरुषोंमें थे, जिनके श्रवण अत्याचारपीड़ितोंकी आर्त पुकार सुननेको सदा सावधान रहते हैं ।

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' श्रुतिका यह अंश सदा सम्मुख रहता था समर्थके शिष्योंके । साधनाश्रम सुपुष्ट, व्यायामशील, सतेज, तरुण साधुओंके आश्रम थे । उनमें निरुद्योग, रसनाकी तुष्टिके लिये उदरको अनावश्यक भरते रहनेवालोंके लिये स्थान नहीं था । जिनके अन्तरमें उत्साह हो, आर्तोंको आश्रय देनेकी उदारता हो और साथ ही संसारके विषयोंसे सचमुच वैतृष्ण्य हो, वे ही उन आश्रमोंके साधक बन पाते थे ।

गोपालन, आश्रमसेवा, व्यायाम और आस-पासके अन्यायपीड़ित, अनाश्रित अथवा प्रारब्धपीड़ित रुग्णजनोंकी

सेवा, उनकी सहायता—आपत्तिमें पड़े प्राणियोंका उद्धार—श्रीसमर्थके आश्रमोंकी यही आदर्श परम्परा थी ।

बड़ा सीधा पथ था । प्रायः श्रीसमर्थने अपने आश्रमों-में गोमयनिर्मित मारुति-मूर्तियाँ स्थापित की थीं । उनमेंसे अनेकों मूर्तियाँ अब भी हैं । सेवा तथा शौर्यके प्रतीक उन श्रीरामदूतकी उपासना—उन्हींका आदर्श ।

आश्रमके साधु ब्रह्मचारी थे । उन्हें मुख्य शिक्षा मिलती थी—'शरीर अनित्य है । मनुष्य तो मृत्युका ग्रास होता ही है । सौभाग्य उसका जो श्रीरघुनाथकी सेवामें शरीर उत्सर्ग कर सके ।'

अपने लिए दो कौपीनके टूक और एक तुम्बीका कमण्डलु पर्याप्त था साधकोंको । आश्रमकी गायें उन्हें दूध दे देती थीं । ज्वारके टिक्कर उन्हें सुस्वादु लगते थे और यह कुछ भी न हो—पत्ते, दूर्वा, बिल्व आदिसे क्षुधा सन्तुष्ट कर लेना उन्होंने सीखा था । वे अन्ततः श्रीमारुति-के उपासक थे ।

वे शान्तिके समुपासक—यों संसार जानता है कि श्रीसमर्थके सेवक शस्त्र रखते थे, शस्त्र-शिक्षा प्राप्त करते थे । किसी आपत्तिमें पड़ेका उद्धार करना हो—उन्हें शस्त्र उठानेके लिए सोचना नहीं पड़ता था ; किंतु उन्होंने अपवादस्वरूप ही कहीं शस्त्राघात किया होगा—केवल वहीं, जहाँ पीड़ितका उद्धार उसके बिना अशक्य हो गया हो ।

'साधुका कोई शत्रु नहीं होता ।' समर्थ स्वामीकी अद्भुत शिक्षा थी । 'अत्याचारी दयाका पात्र है ; क्योंकि

वह सत्यसे भटक गया है। वह दण्डनीय भी हो तो यह काम साधुका नहीं।'

'प्राण देकर भी पीड़ितका उद्धार कर लेना परम व्रत है।' साधक साधुओंको उनके अनुपम गुरुने सिखाया था। 'उसका उद्धार करनेमें अपनेपर आघात सह लेना सच्ची शूरता है। आघात तो उतना ही और वहीं आवश्यक है, जहाँ जितनेके बिना स्वयं आहत होकर भी पीड़ितको परित्राण देना शक्य न रह जाय।'

कदाचित् ही कभी ऐसा अवसर आया हो। समर्थके सेवकोंमें एक भी आततायियोंके समुदायमें जहाँ पहुँच पाता था, उसका आतङ्क ही पीड़ितके प्राण बचा देनेको पर्याप्त था।

'ये काफिर फकीर—शैतानोंका काफिला इनके काबू-में है। ये शमशेर उठाते हैं तो डायनें खप्पर लेकर उतर आती हैं आसमानसे।' अत्याचारी-वर्गमें पता नहीं कितनी बातें फैली हैं—'इनकी बददुआसे पूरी फौज महामारीसे मर जाती है।'

'समर्थका साधु आ गया!' अच्छे-अच्छे सेनापतियोंके हौसले पश्त हो जाते थे यह सुनते ही। 'अच्छा, उसे निकल जाने दो। वह जिन्हें ले जाना चाहे, ले जाने दो।'

पूरा आक्रमण जिस अबलाको उड़ानेके लिए था, समर्थका एक साधु समूची सेनामेंसे उसे सुरक्षित ले निकल जाता। 'वह किसीको मारेगा नहीं। दौलत बचानेकी उसे कोई फिक्र नहीं होगी।' शत्रुके सैनिक भी यह समझते थे।

'अब तुम आश्रमके योग्य नहीं हो।' अपने ऐसे अद्भुत साधुओंमें भी एक आश्रमके संचालकको उस दिन श्रीसमर्थने कह दिया। 'तुममें कापुरुषताके बीज आ गये। कहीं घर बना लो और विवाह करके गार्हस्थ्य स्वीकार करो!'

× × ×

'बचाओ, मेरी बच्चीको बचाओ!' लगभग अर्ध-रात्रिके समय आर्त चीत्कारने निद्रासे उठा दिया था रघुनाथदासको। आतुरतापूर्वक उन्होंने प्रदीप उठाया और कुटियाका द्वार खोला।

'वे उसे लिए जा रहे हैं! वे पिशाच उसे घोड़ोंपर ले जा रहे हैं।' एक रक्तस्नात पुरुष दौड़ता आ रहा था। उसके पैर अस्तव्यस्त पड़ रहे थे।

'उसे बचाओ! मेरी बच्ची…।' रघुनाथदास शीघ्रता-से लपके; किंतु वह लड़खड़ाकर गिर पड़ा। दुर्भाग्यसे उसका सिर एक बड़े पत्थरपर पड़ा। यह अन्तिम आघात—पहले ही उसपर पता नहीं कितनी चोटें पड़ी थीं। अवश्य उसने शत्रुओंका डटकर सामना किया होगा। एक बार शरीरमें तड़पन हुई और वह शान्त हो गया।

प्रदीप पास रखकर रघुनाथदास पृथ्वीपर बैठ गये। उन्होंने नाड़ी देखी, हृदयपर हाथ रखा—कोई जीवनचिह्न नहीं था। शवको उठाकर आश्रममें ले आये।

आज वे एकाकी रह गये हैं आश्रममें। आवश्यक सूचनापर सभी साधु अन्यत्र सेवाकार्यके लिए चले गये

हैं। एक ही अश्व रह गया है और······किंतु कोई आर्य-कन्या अत्याचारियोके हाथ पड़ गयी है। श्रीसमर्थके आश्रमतक उसकी आर्त पुकार पहुँच चुकी तो उसका उद्धार अनिवार्य हो गया। अश्वारोही पता नहीं किधर कितनी दूर निकल गये। एक-एक क्षण मूल्यवान् था। शवको सुरक्षित रखकर अपना अश्व कसा और शस्त्र सम्हाले। एक आश्रमका संचालक साधु दो क्षणमें पीड़ित-परित्राणका सैनिक बना घोड़ेपर उड़ा जा रहा था।

आहत परिचित था। उसके ग्रामतक पहुँचना कठिन नहीं हुआ। आक्रमणकारियोंका दल किधर गया, यह वहाँसे पता लग गया।

'जय जय श्रीरघुवीर समर्थ !' अरुणोदयसे पूर्व ही रघुनाथदासका अश्व आक्रमण करके निश्चिन्त चले जाते शत्रु-सैनिकोंके पीछे पहुँच गया।

'समर्थका साधु!' आततायियोंमें आतंक व्याप्त हो गया। वे यद्यपि संख्यामें पर्याप्त अधिक थे—एक साधु पैंतालीस सशस्त्र सैनिकोंका क्या कर लेता ? किंतु रघुनाथदासको तो शिक्षा मिली थी—'आर्तका परित्राण प्रभुकी सेवा है। उसमें शरीर उत्सर्ग हो जाय, परम सौभाग्य !'

'उस लड़कीको उतार दो चुपचाप !' शत्रु-सैनिकोंके मध्य उनका अश्व अशङ्कभावसे चलता चला गया और सरदारके पार्श्वमें पहुँचकर उन्होंने ललकारा—'समर्थके साधुको शस्त्र उठानेपर विवश मत करो !'

'उतार दो ! उतार दो, सरदार, उसे !' शत्रुके सैनिक ही चीखने लगे। 'खुदाके लिये उतार दो !'

चारों ओर घोर वन, मशालोंकी रोशनी आस-पास और ऊपर जहाँतक जाती है, उससे आगे लगता है प्रेतोंका झुंड मुख फाड़े अँधेरेमें छिपा है। भयसे उन अत्याचारियों-ने इधर-उधर और ऊपर देखा। वनके पत्ते, डालियाँ वायुसे खड़खड़ाते ही रहते हैं। वे काँप उठे। 'यह शमशेर उठायेगा तो अभी भूतनियाँ खप्पर लेकर आसमानसे उतर आयेंगी।'

'चुपचाप उसे उतार दो, अन्यथा!' रघुनाथदासका अश्व सरदारके अश्वसे आ सटा था। अपना एक हाथ तलवारकी मूठपर रखकर सरदारके मुखपर दृष्टि जमायी उन्होंने और दूसरा हाथ सरदारके आगे बैठी आकृतिकी ओर बढ़ा दिया। अश्वकी लगाम इस क्षण मुखमें आ गयी थी।

'उतार दो उसे!' साथी चीख रहे थे। सरदारका मुख पीला पड़ गया था। वह कुछ करे या सोचे, इससे पहिले उसके आगे बैठी आकृतिको रघुनाथदासके हाथने अपने अश्वपर उठा लिया और तब उनका अश्व पीछे मुड़ पड़ा।

'जान बख्शी खुदाने!' सरदारका श्वास ऊपर अटक गया था भयसे। अब वह आश्वस्त हुआ।

'मौतका फरिश्ता था यह काफिर!' दूसरोंके घोड़े भी पास खिसक आये। 'इनके करिश्मोंसे खुदा बचाये।'

× × ×

'श्रीरघुनाथकी सेवा कापुरुषोंका काम नहीं है।' समर्थ स्वामी रामदास प्रातःकाल आश्रमपर पहुँचे थे और

अचानक असन्तुष्ट हो गये थे संचालकपर। 'जिसमें शौर्य नहीं है, वह साधन नहीं कर सकता।'

अबतक और साधु भी आ गये थे। सबने अपने भाग-का सेवाकार्य सम्पन्न कर लिया था। प्रातःस्नान, सन्ध्या एवं अर्चनसे अवकाश मिलते ही सबको श्रीसमर्थने अपने समीप बुला लिया। अब सबके सम्मुख वे संचालकको सम्बोधित कर रहे थे—'अब तुम आश्रमके योग्य नहीं रहे! कहीं अलग रहो और गृहस्थाश्रम अपना लो तो अच्छा।'

'हुआ क्या है ?' किसीकी समझमें बात नहीं आ रही थी। संचालकने कोई प्रमाद नहीं किया था। रात्रिमें वे एकाकी जाकर यवनोंद्वारा हरण की गयी कन्याको ले आये थे। कहीं कोई कापुरुषता—उन सम्मान्यके द्वारा कापुरुषताकी कल्पना भी कठिन है; किंतु श्रीसमर्थ सर्वज्ञ हैं। वे अकारण इतने क्षुब्ध भी तो नहीं हो सकते। अब तो वे साधु भी आ गये थे, जिन्हें रात्रिके सुरक्षित शवको सरितामें विसर्जित करनेका आदेश मिला।

'वह लड़की कहाँ है ?' समर्थने पूछा।

'लक्ष्मणदास उसे उसके मामाके यहाँ पहुँचाने गया है।' संचालक बोलनेका साहस नहीं कर सके तो एक दूसरे साधुने कहा। 'वह बार-बार मूर्च्छित हो रही थी। सम्भव है, स्वजनोंमें पहुँचकर कुछ आश्वस्त हो।'

'इस बार श्रीचरण मुझे क्षमा करें! हिचकियाँ लेते हुए रघुनाथदास समर्थके चरणोंपर गिर पड़े।

सौन्दर्यकी वह साकार सुकुमार मूर्ति—बहुत दूरतक उसे अश्वपर अपने आगे—अपने अङ्कमें बिठाकर लाना पड़ा था। अरुणोदयकी आभामें उसकी वह म्लान

मुखश्री—रघुनाथदासको दोष कैसे दिया जाय। साधन-परिशुद्ध उनके चित्तमें पता नहीं कहाँसे मनोभव उठ खड़ा हुआ था। वे तरुण हैं, उनके बाहु थरथराये थे। बालिका-को सम्भवतः कुछ अधिक सावधानीसे अश्वपर उन्होंने सम्हाल लिया था—इससे अधिक तो कुछ नहीं।

'आँखका स्वभाव है रूपपर आकृष्ट होना' सर्वज्ञ गुरु शिष्योंको सचेत कर रहे थे—'इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों-का स्वभाव अपने-अपने विषयोंकी ओर जाना है। मनका स्वभाव सङ्कल्प-विकल्प करते रहना है। इन्द्रियों एवं मनके इस स्वभावपर जिसने विजय प्राप्त कर ली, केवल वही शूर है। शेष सब कापुरुष हैं। साधु वह हो नहीं सकता, जिसमें शौर्य न हो। श्रीरघुवीर समर्थकी सेवा तो मन-इन्द्रियवर्गके स्वभावपर विजय पानेवाला शूर ही कर सकता है।'

'केवल इस बार श्रीचरण मुझे क्षमा करें।' रो रहे थे रघुनाथदास गुरुके चरणोंपर मस्तक रखे।

'आश्रममें तुम्हें स्थान नहीं दिया जा सकता।' कुसुमकोमल संत पता नहीं क्यों कभी-कभी वज्र-कठोर हो उठते हैं। 'तुम्हें गार्हस्थ्य स्वीकार करनेकी आज्ञा मैं नहीं देता। वह तुम्हारी इच्छापर निर्भर है; किंतु कहीं अलग रहो। साधु रहना हो तो शौर्यका उपार्जन करना चाहिये।'

'श्रीचरणोंके आशीर्वाद और कृपाका मैं अधिकारी रहूँ!' रघुनाथदासने आर्त प्रार्थना की—'अलग रहूँगा आश्रमसे।'

'अवश्य! अभी एकान्त-साधन आवश्यक है तुम्हें।' समर्थने आशीर्वाद दे दिया। ❁